chapter 3.

# तृतीय अध्याय

## आदिकालीन मैथिली नाटक ।

# तृतीय अध्याय

## आदिकालीन मैथिली नाटक

साहित्य और समाज में घनिष्ठ संबंध है। आचार्य शुक्लने लिखा है कि "साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, - - - - - - - - - - चित्तवृत्तियों के परिवर्तन के साथ साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। - - - - जनता की चितवृत्ति का निर्माण बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होता है।"[१] अत: युग गत परिस्थितियां समाज की मनोभावना के साथ साथ साहित्यकार को भी प्रभावित करती हैं, यद्यपि साहित्य में सम-सामयिक जीवन को शक्ति तथा अमरत्व प्रदान करनेवाली जीवन-दायिनी बूंदें भी एकत्र हैं। अतएव इस तथ्य के प्रकाश में आदिकालीन मैथिली नाटकों पर विचार करने के पूर्व हमें समकालीन ऐतिहासिक परिस्थितियों पर विचार कर लेना आवश्यक होगा।

राजनीतिक स्थिति -------- आलोच्य काल में सम्पूर्ण बिहार में राजनीतिक अशांति की स्थिति बनी रही। तिरहुत में कर्णाट वंश की स्वतंत्र शासन-व्यवस्था चलती थी, किन्तु १२०१ ई. के आसपास बख्तियार खिजलीने इस वंश के राजा को पराजित कर उस प्रदेश को अपने अधीन कर लिया। इन दोनों के समझौते के अनुसार सिमरांव के नरसिंह देव को गयासुद्दीन के समय तक कर देते रहना पड़ा। नरसिंह देव ने इवाज से संधि कर ली और दक्षिण बिहार को अधीन करने में उसकी सहायता भी की, जिसके बदले में उन्हें कर देने से मुक्ति

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास (आचार्य शुक्ल), पृ.१ (२०१४ वि.सं.)

दे दी गयी । किन्तु कुछ समय पश्चात् इलतुतमिश इन से रूष्ट हो गया, फलत: इन्हें पुन: कर देने के लिये बाध्य होना पड़ा ।[१] तुघरिल तुघान के बिहार का शासक होने पर उसकी निर्बलताओं से तिरहुत के राजा नरसिंह देवने लाभ उठाना चाहा, किन्तु सुलतान रजिया की सहायता से उसने इन्हें बन्दी बनाकर पहले तो लखनौती में रखा और कुछ दिन बाद दरभंगा भेज दिया । ईस्वी सन् १३२४ के आसपास सुलतान गयासुद्दीनने तिरहुत के तत्कालीन राजा हरिसिंह देव को पराजित कर वहां के शासन-सूत्र को अपने हाथ में ले लिया । मुहम्मद तुगलक के समय के कुछ सिक्के प्राप्त हुए हैं जिससे सिद्ध होता है कि उत्तरी बिहार का शासन-सूत्र सम्पूर्णत: दिल्ली के अधीन था और यहां के राजा अधीनस्थ कर दाता थे ।[२]

इसके पश्चात् बंगाल के सुलतान शमसुद्दीन उर्फ हाजी इल्यासने अपने सैनिक बल के आधार पर तिरहुत और चम्पारन तक अपने राज्य का विस्तार किया तथा उत्तर बिहार में अपने नाम से दो नगरों --- हाजीपुर और शमसुद्दीनपुर-समस्तीपुर- को बसाया । किन्तु सुलतान फिरोज तुगलकने कोसी नदी को पार कर इल्यास को बुरी तरह से हरा कर तिरहुत और चम्पारन को अपने अधीन में कर लिया और ओइनवार वंश के संस्थापक महेश ठाकुर को कुछ दिनों तक कैद में रखकर पुन: छोड़ दिया तथा कुछ मुसलमान शासकों को इस प्रदेश में इस्लाम धर्म एवं नियम के प्रचार के लिये नियुक्त किया ।[३] इस बीच अनेक उथल

-------------------------

१. बिहार थ्रु द एजेज़ - पृ.३८६

२. वही, पृ.३८८

३. वही, पृ.३९२

३

पृथक होते रहे और १४८६ ई. तक शरकी शासकों के अधीन सम्पूर्ण बिहार का शासन-सूत्र रहा । खुदाई के आधार पर यह ज्ञात होता है कि इसी वंश के शासक महमद शरकीने जयनगर तक अपने राज्य का विस्तार किया था । इस वंश के पश्चात् बहलोल लोदी तथा उसके उत्तराधिकारी के हाथ में बिहार का शासन आ जाता है, फलतः १४९५ ई. में सम्पूर्ण प्रान्त का शासन दिल्ली के अधीन हो जाता है ।[१]

सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति -------- मिथिला के ब्राह्मण प्राचीन काल से ही रूढ़िवादी और कट्टर पंथी रहे हैं, अतः बौद्ध धर्म के प्रभाव से समाज में फैले हुए रक्त की अशुद्धता के निवारण के लिये इस प्रदेश के कर्णाट वंशी राजाने प्रयास किया, जिसके परिणाम स्वरूप कुलीनता की प्रथा प्रचलित हुई । किन्तु रक्त-मिश्रण के परिहार के जिस उद्देश्य से इस कुलीनता की कल्पना की गयी, उसकी पूर्ति नहीं होने पायी । इस के विपरीत, इस तथाकथित संस्था के कारण समाज में अनेक प्रकार के भ्रष्टाचार का समावेश हुआ । सामाजिक विशृंखलता के कारण जन सामान्य के जीवन में विलासिता, आडम्बर, भ्रष्टाचार, कपट, धूर्तता और मिथ्या भक्ति का समावेश हुआ । दासता, दरिद्रता एवं वेश्यावृत्ति तत्कालीन समाज के आवश्यक अंग-से बन गये थे । अतएव ज्योतिरीश्वर को इन सामाजिक व्याधियों पर निर्ममता से प्रहार कर उनके उपचार के लिये "प्रहसन" का आश्रय लेना पड़ा ।

---------------------

१. बिहार थ्रु द एजेज़ - पृ.३६४

४

आलोच्यकाल के मिथिला के धार्मिक जीवन में अनेक "वादों" के साथ ही कुरूढ़ियों का भी समावेश हुआ । इस प्रदेश में ज्ञान, कर्म एवं भक्ति के समन्वय के आधार पर बहुदेव वाद की उपासना प्रचलित थी । किन्तु वज्रयान के प्रभाव के कारण तांत्रिक पद्धति को प्रश्रय मिला, फलत: शिव-शक्ति की प्रधानता प्रतिष्ठित हुई ।[१] इसके साथ ही, इसकाल के कुछ पूर्व से ही "भागवत्" धर्म की लोकप्रियता शनै: शनै: बढ़ रही थी, जिसके प्रचार में जयदेव के गीत गोविन्दने पर्याप्त मात्रा में सहयोग किया । इस धर्म का संबंध रागात्मिका वृत्ति से होने के कारण जन-हृदय अत्यधिक प्रभावित होकर सर्व-शक्तिमान के समक्ष विभोर की स्थिति में आत्म-निवेदन प्रस्तुत करता था । रागात्मिका वृत्ति की स्वाभाविकता और सरलता के कारण वैष्णव धर्म -- विशेषकर कृष्ण भक्ति-ने भी जन-जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया । यही कारण है कि उमापति और विद्यापतिने राधाकृष्ण विषयक अनेक उत्कृष्ट पदों की रचना प्रस्तुत कर लोकप्रियता प्राप्त की ।

पूर्व से ही प्रचलित सिद्ध और नाथ सम्प्रदायने भी यहां के जन-जीवन को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया । नाथ पंथियोंने अपने सम्प्रदाय में योग एवं शिव-तत्त्व का समावेश कर और भी अधिक जन-नैकट्य प्राप्त कर लिया ।[२] इस नैकट्य के कारण, पश्चात् कालीन इस सम्प्रदाय के कतिपय भ्रष्टाचारों का भी समावेश यहां के जन-जीवन में हुआ । रामधारी सिंह "दिनकर" ने[३]

---

१. बिहार थ्रु द एजेज़ - पृ. ४१०
२. वही, पृ. ४१२
३. विशेष विवरण के लिये द्रष्टव्य - संस्कृति के चार अध्याय में क्रांति की गंगा में शैवाल - नामक प्रकरण - पृ. १६२-२२०

५

एतद्विषयक तथ्य का उद्घाटन करते हुए लिखा है कि "धर्म ज्यों ज्यों योग और मंत्र में सिमटता गया, जनता त्यों त्यों रूढ़ि और अंध विश्वासों में और भी ग्रसित होती गयी और जिस धर्मने हिन्दुओं को पुरोहित वाद के चक्कर से छुड़ाने का बीड़ा उठाया था, खुद अब वह जनता को भरमाने के लिये योगाचार और मंत्रों का सहारा लेने लगा ; फलत: पाखंडी साधुओं की संख्या में वृद्धि होने के कारण, जनता चिन्तन की शक्ति खो बैठी और सारा समाज अन्ध विश्वासों का दास हो गया । - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - मंत्र और योग के चमत्कारों से संवलित रहने के कारण, यह सम्प्रदाय काफी लोकप्रिय हो गया और ज्यों ज्यों इसकी लोकप्रियता बढ़ती गयी, त्यों त्यों धर्म में दुराचार का भी प्रवेश अधिक होता गया । यहां तक कि इस दुराचार को ढकने के लिये धर्माचार्यों को एक नवीन दर्शन की आवश्यकता का अनुभव होने लगा, और उस दर्शन को "सुखवाद" के नाम से अभिहित किया गया -- जिसमें पर स्त्री-गमन तक को विहित कर्म बताया गया । इस सुखवाद में पंचमकार की प्रधानता बढ़ी और यहां तक कहा गया कि स्वेच्छा पूर्वक खाने-पीने और सुख में रमण करने से सांसारिक भय मिट जाते हैं और साथ ही परलोक भी बनता है । इस सम्प्रदाय का अनुयायी किसी नीच जाति की सुन्दरी स्त्री को ले कर अपने गुरू के निकट जाता था और उसके आदेशानुसार उसे अपनी महा मुद्रा बना लेता था, फलत: सिद्धि को प्राप्त करने के बदले वह कामोपभोग में लिप्त हो जाया करता था । इन कारणों से मठों के अप्राकृतिक जीवन में बहुत-सी बुराइयां बहुत भारी परिमाण में घुस आयीं ----- स्त्री-पुरूषों

को मद्य - मैथुन की पूरी स्वतंत्रता दी गयी । - - - - - - - - -
यह सहजिया सम्प्रदाय केवल बौद्धों तक ही सीमित नहीं रहा, वह वैष्णव धर्म में भी आया । इस वैष्णव धर्म में परकीया बाद एवं अन्य सरसताओं का समावेश उसी की देन है ।"

ज्योतिरीश्वरने अपने प्रहसन में तत्कालीन समाज का जो नग्न चित्र प्रस्तुत किया है उससे भी समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार, पंचमकार का उन्मुक्त भोग, मठों द्वारा धर्म एवं नैतिकता की दुर्दशा तथा इन के कारण समाज के कर्णधारों की धूर्तता का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है ।

"बौध्यों के दीर्घकालीन प्रचारने, आखिर कार, समाज में एक ऐसा समुदाय तैयार कर दिया जो निराकार को पूजता था और जो जाति प्रथा का द्रोही और स्मृतियों का विरोधी था । सिद्ध, नाथ पंथी और बाद के निर्गुनियां संत इन्हीं बौद्ध प्रचारकों के उत्तराधिकारी थे । गोरखनाथ के पूर्व ऐसे बहुत-से बौद्ध, शैव और शाक्त सम्प्रदाय थे, जो वेद बाह्य होने कारण न हिन्दू थे न मुसलमान । - - - - - - - - - - - दसवीं शताब्दी में ब्राह्मण-धर्म सम्पूर्ण रूप से अपना प्राधान्य स्थापित कर चुका था, फिर भी बौद्धों, शाक्तों और शैवों का एक बड़ा भारी समुदाय ऐसा था जो ब्राह्मण और वेद की प्राधानता को नहीं मानता था । युग पुरूष गोरखनाथने सामाजिक शृंखला की स्थापना तथा विभिन्न सम्प्रदायों के विवादों के परिहार के लिये अपने नये सम्प्रदाय में बौद्ध, शैव तथा शाक्त सम्प्रदायों को अन्तर्भुक्त कर लिया ।"

७

तुलसीदासने जिस गोरख पंथी के लिये कहा कि "गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग," उसी गोरखनाथ के चरित्र को अपनाकर नाटक की रचना, कट्टर सनातन धर्मी, विद्यापतिने संभवत: इसलिये की कि इस पंथ में शैव एवं शाक्त सम्प्रदाय अन्तर्मुक्त हो गये थे, जिसका उस समय में बहुत अधिक प्रभाव था।

उपर्युक्त परिस्थितिओं की विविधता के कारण आदिकाल के मैथिली नाटक की धारा तीन भागों में विभक्त हो जाती है। मैथिली-हिन्दी के प्रथम नाटककार ज्योतिरीश्वरने प्रहसन की रचना कर सामाजिक गलित कुष्ठों पर निर्मम प्रहार किया है। द्वितीय धारा अथवा कीर्तनियां शैली के पुरष्कर्ता उमापति उपाध्यायने कृष्ण के चरितों को अपना कर कीर्तनियां शैली में अपनी रचना प्रस्तुत की, और नाथ सम्प्रदाय के व्यापक प्रभाव एवं शैव-शाक्त मतों से उसे समन्वित होने के कारण विद्यापतिने गोरखनाथ के विषय में चरित्रात्मक नाटक की रचना प्रस्तुत की। इन तीन भिन्न प्रकार की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय एवं विवेचन पूर्व निर्दिष्ट अनुक्रम से प्रस्तुत किया जायेगा।

## १. प्रहसन

पूर्ववर्ती पृष्ठों पर राजनीतिक उथल पुथल के संबंध में संकेत किया जा चुका है। विधर्मी शासकोंने, रंगमंचीय परंपरा से सर्वथा अनभिज्ञ रहने के कारण, इस ओर ध्यान नहीं दिया। अतएव शास्त्रीय नाट्य - परंपरा का पतन होना स्वाभाविक ही था, किन्तु यह परंपरा सम्पूर्ण रूप से खंडित नहीं होने पायी। इसी

संक्रान्ति काल में रूपक के अन्य लोक प्रचलित प्रभेदोंने शास्त्रीय नाट्य का स्थान ग्रहण कर लोक रंजन करना प्रारंभ किया । इस विषम एवं संकटापन्न परिस्थिति में भाण या प्रहसन अथवा अन्य अपेक्षाकृत कम संस्कृत रूपों के अपनाये जाने के मुख्यत: तीन कारण दृष्टिगोचर हो रहे हैं । प्रथम तो यह कि ये रूप अत्यन्त प्राचीन हैं, जिनकी विशेषताओं को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनके अन्तर्गत अश्लील शृंगार, हास्य एवं लोक रंजन का समावेश आदिम अवस्था के प्रतीक हैं ।[१] उस समय के समाज की रूचि अत्यन्त निकृष्ट कोटि की हो चुकी थी, अत: उस अभिरूचि की तृष्टि के लिये इन रूपों को ही अपनाना अधिक उपयुक्त था ।

द्वितीय अध्याय में हम देख चुके हैं कि अरस्तू तथा अन्य पाश्चात्य नाट्याचार्यों ने भी, भाण एवं प्रहसन की भांति कामदी ( Comedy ) को, उसके स्वरूप के आधार पर आदिम अवस्था का ही प्रतीक माना है, साथ ही इसे त्रासदी ( Tragedy) से प्राचीन भी स्वीकार किया है । इसमें निम्न कोटि के पात्रों का अनुकरण रहता है, इसके लेखक की सामग्री सुपरिचित एवं घरेलू घटनाओं से संबंधित होती हैं और इसमें फूहड़पन तथा अश्लील एवं निम्नस्तरीय तत्वों का समावेश किया गया रहता है ।

इन रूपों के अपनाये जाने का दूसरा और महत्वपूर्ण कारण यह था कि उस समय में आधुनिक युग की भांति समस्या नाटकों का प्रचलन नहीं था । समाज में फैली हुई कुरीतियों, कुरूढ़ियों तथा अन्य व्याधियों को दूर करने के लिये लेखकों का हृदय सदैव उद्वेलित

---

१. टाइप्स ओफ संस्कृत ड्रामा (डी.आर.मांकड) - पृ.१७०

रहता था । अतएव उन लोगोंने भाण और प्रहसन के माध्यम से ही उन खोखलेपनों का पर्दाफाश करना प्रारंभ किया, क्योंकि ये दो ही उनके अस्त्र थे । किन्तु दोनों की प्रणाली में मुख्य भेद यह होता है कि भाण का व्यंग्य बड़ा ही गंभीर और उदात्त होता है, जब कि प्रहसन का कुछ छिछला होता है । यही कारण है कि भाण में शृंगार की प्रधानता और वीर की गौणता रहती है, तथा प्रहसन का मुख्य रस हास्य होता है ।

इन रूपों के अपनाये जाने का तीसरा कारण यह है कि प्रहसन के द्वारा हास्य प्रदर्शित कर बालकों, मूर्खों और स्त्रियों में नाट्य विषयक अभिरूचि उत्पन्न की जाती है । इससे नाटक के विषय में रूचि हो जाने पर शेष रूपक के भेदों के द्वारा उनको धर्म, अर्थ और काम की शिक्षा प्रदान की जाती है, और साथ ही आचारहीन, पाखंडी आदि का शुद्ध वृत्त तथा धूर्तादि से व्याप्त बन्ध की आदि का संकीर्ण चरित त्याज्य रूप से दिखलाया जाता है ।[१] इस शैली में मैथिली नाटकों के आदिकाल में हमें ज्योतिरीश्वर का "धूर्त समागम" प्राप्त होता है, जिस पर आगे विचार किया जा रहा है ।

## मैथिली धूर्त समागम : नाटकीय समीक्षा

ज्योतिरीश्वरने संस्कृत में भी "धूर्त समागम" प्रहसन की रचना की है । प्रहसन से संबंधित विशेषताओं को उपर्युक्त विवेचन में निर्दिष्ट

---

१. प्रहसनेन च बाल-स्त्री-मूर्खाणां हास्य प्रदर्शनेन नाट्ये प्ररोचना क्रियते । ततः सज्जात नाट्य रूचयः शेषरूपके धर्मार्थकामेषु व्युत्पाद्यन्ते । तथा वृत्तच्युतस्य पाखण्डि प्रभृतेर्वृत्तं शुद्धं बन्ध क्यादेश्च धूर्तादि संकुलं संकीर्णवृत्तं त्याज्यतया व्युत्पादयते ।
(नाट्य-दर्पण, द्वितीय विवेक, सूत्र १३३ की व्याख्या)

किया जा चुका है । ज्योतिरीश्वरने भी अपने इस प्रहसन में हास्य एवं अश्लील शृंगार के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों पर गहरा व्यंग्य किया है । उस समय समाज में किस भांति ब्रह्मचारी एवं सन्यासी के वेष को धारण करने वाले व्यक्तियों से भ्रष्टाचार, विकृत वासना, ढोंग आदि को प्रश्रय मिल रहा था, इन तथ्यों को लेखकने समाज के समक्ष न केवल नग्न रूप में उपस्थित किया है, अपितु उसने समाज को इन छद्म वेषी वंचकों से दूर रहने की चेतावनी भी दी है । राजदरबार, विहार एवं मठादि में प्रवेश के कारण स्त्रियां किस प्रकार स्वेच्छाचारिणी होकर निर्लज्जतापूर्ण व्यवहार करती थीं, इसको भी नग्नतम रूप में प्रस्तुत करते हुए लेखकने कटु-कठोर व्यंग्य किया है । दमित एवं कुंठित वासना के कारण कामिनी-कंचन के प्रलोभनों से विहारों में गुरु-शिष्य की परंपरा को किस भांति विस्मृत कर दिया जाता था और तथाकथित वेष की ओट में वासनाओं की तुष्टि की जाती थी ; इन सबका अत्यन्त ही मनोवैज्ञानिक तथा प्रभावोत्पादक हास्य-चित्र विश्वनगर, स्नातक और सुरतप्रिया के चरित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है । धनियों की कृपणता, ढोंगियों का मिथ्या अहंभाव, जन-सामान्य की कामुकता, तत्कालीन समाज की भोजन प्रियता, वाममार्गियों के प्रभाव के कारण भोजन में मत्स्य-मांस की अधिकता, पंचों का कपट एवं धूर्तता, विकृत लोलुपता और तथाकथित समाज के कर्णधारों के व्यक्तिगत जीवन की घोर चरित्र-हीनता तथा बेहयापन आदि इस तरह के अन्य सामाजिक गलित व्याधियों पर निर्दयतापूर्वक प्रहार

करने से लेखक नहीं चूका है । इन प्रहारों के अतिरिक्त लेखकने मिथिला के व्यवहारों की एक झलक भी प्रस्तुत की है -- जैसे, मिथिला में प्रचलित पंचायत प्रणाली, भोजन सामग्री, दामाद या बारात के चलने के समय में नापित के द्वारा उन्हें दर्पण दिखाने की प्रथा आदि ।

प्रस्तुत 'धूर्त समागम' प्रहसन की हस्त लिखित प्रति डा. जयकान्त मिश्र को खंडित रूप में ही प्राप्त हो सकी है । इन प्रतियों के आधार पर इसका जो संस्करण उनके द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका है, उसे ही लेखकने, किसी पूर्ण प्रति के अभाव में, प्रस्तुत विवेचन का आधार बनाया है । उपलब्ध संस्करण के आधार पर यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो जाता है कि नाट्य शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह अधिकांश रूप में उक्त प्रहसन में हुआ है । भारतीय नाट्याचार्योंने[1] प्रहसन की परिभाषा एवं विशेषताओं

------------------------------

१. भूयसा भारती वृत्ति रेकाङ्कं वस्तु कल्पितम् ।
मुखनिर्वहणे साङ्गे लास्यांगानि दशापि च ।। ५१ ।।
तद्वत्प्रहसनं त्रेधा शुद्ध वैकृत संकरैः ।
पाखण्डि विप्र प्रभृति चेट चेटी विटा कुलम् ।। ५४ ।।
चेष्टितं वेषभाषाभिः शुद्धं हासवचोन्वितम् ।
कामुकादि वचो वेषैः षण्ढ कंचुकि तापसैः ।। ५५ ।।
विकृतम् संकराद्वीथ्या संकीर्णं धूर्त संकुलम् ।
रसस्तु भूयसा कार्यः षड्विधो हास्य एव तु ।। ५६ ।।
(दशरूपक - तृतीय प्रकाश)
तुलनीय, भाव प्रकाश, अष्टमोधिकारः ।

का उल्लेख करते हुए कहा है कि इसमें एक ही अंक की योजना की जानी चाहिये । कथावस्तु कवि कल्पित होती है और भारती वृत्ति की प्रधानता रहती है । केवल मुख तथा निर्वहण संधियों एवं यथा संभव इनके अंगों की भी योजना प्राय: की जाती है और इसके साथ ही उसमें यथावसर प्राय: दस लास्यांगों - गेय पद, स्थिति पाठ्य, आसीन, पुष्पगंडिका, प्रच्छेदक, त्रिगूढ, सैन्धव, द्विगूढ, उत्तमोत्तमक, तथा उक्त प्रयुक्त ----- का भी सन्निवेश किया जाना चाहिये । यह प्रहसन तीन प्रकार का होता है --- शुद्ध, विकृत तथा संकर । शुद्ध प्रहसन में पाखंडी, ढोंगी, संन्यासी-ब्राह्मण-हास्यरस के विभाव आदि चेट तथा चेटियों की बहुलता रहती है । इन पात्रों की भाषा एवं वेष के अनुरूप ही इनके व्यवहार एवं इनकी चेष्टाएं होती हैं । यह प्रहसन हास्यपूर्ण वचनों से युक्त होता है । जहां ऐसे नपुंसक, कंचुकी या तपस्वी पात्र निबद्ध हों, जो कामुक लोगों के वचन तथा वेष का प्रयोग करें, वह प्रहसन विकृत कहलाता है । धूर्त व्यक्तियों से पूर्ण प्रहसन संकर कहलाता है । उपर्युक्त तीनों प्रकार के प्रहसनों में केवल हास्य रस का ही प्रयोग होना चाहिये, और यह हास्य रस भी पूरी तरह से अपने छहों भेदों --- हसित, अपहसित, उपहसित, अवहसित, अतिहसित तथा विहसित --- में उपनिबद्ध होना चाहिये ।

आलोच्य प्रहसन में उपरि निर्दिष्ट तीनों प्रकार के प्रहसनों का मिश्रण है ; क्योंकि इसमें विशुद्ध प्रहसन की भांति पाखंडी, ढोंगी, संन्यासी-ब्राह्मण आदि पात्रों का समावेश एवं हास्य युक्त वचनों का प्रयोग पाया जाता है, विकृत के समान इसमें तपस्वी,

कंचुकी या अन्य पात्र कामुकों की-सी चेष्टाएं करते हैं और संकर नामक प्रहसन की तरह इसमें भी धूर्तों की बहुलता है । यद्यपि प्रहसन के लिये, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, एक अंक की ही योजना अपेक्षित बतायी गयी है, किन्तु ज्योतिरीश्वर ने इस नियम का उल्लंघन कर अपने इस प्रहसन में दो अंकों की योजना की है । आचार्य विश्वनाथने[१] प्रहसन के लिये दो अंकों की योजना भी विहित बतायी है । ज्योतिरीश्वरने अपने प्रहसन में दो अंकों की योजना इसी लक्षण ग्रंथ के आधार पर की होगी, ऐसा कहना युक्ति संगत नहीं होगा ; क्योंकि आचार्य विश्वनाथ या तो ज्योतिरीश्वर के परवर्ती हो सकते हैं या सम सामयिक । किन्तु पूर्ववर्ती नहीं कहे जा सकते । ये दोनों एक ही शताब्दी के हैं किन्तु ज्योतिरीश्वर पूर्वार्ध के ठहरते हैं, जब कि विश्वनाथ उत्तरार्ध के। विद्वानों के अनुसार ज्योतिरीश्वर का समय १३२४ ई. है[२] और 'धूर्त समागम' का रचना काल भी उक्त शदी का प्रथम चरण[३] ही माना गया है किन्तु साहित्य दर्पण का रचना काल १३८२-८४ ई.[४] के आसपास है । इस तथ्य के आधार पर ज्योतिरीश्वर आचार्य विश्वनाथ के पूर्ववर्ती काल के ठहरते हैं । ऐसी स्थिति में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ज्योतिरीश्वर का आधार साहित्य दर्पण कदापि नहीं है । दूसरी संभावना यह मानी जा सकती है कि भले ही आज ऐसा कोई काव्य शास्त्रीय ग्रंथ ज्योतिरीश्वर का न मिलता हो जो कि दो अंकों की योजना को स्वीकार करें, किन्तु

---

१. तत्पुनर्भवति द्वयङ्कमथवैकांक निर्मितम् ।।
साहित्य दर्पण, ६।२६७

२. हिन्दी साहित्य - पृ. ५३४

३. आलोच्य प्रहसन की भूमिका (डा. मिश्र)

४. हिस्ट्री ओफ संस्कृत पोएटिक्स (पी.वी.काने) पृ.२९८

इस मान्यता की प्रतिष्ठा अवश्य हो चुकी थी । यह अनुमान किया जा सकता है कि ज्योतिरीश्वर के पूर्व से ही ऐसे अनेक प्रहसनों की रचना हो रही थी जिन में दो अंकों का विधान विहित था । इस प्रकार के लक्ष्य ग्रंथ अंधकार के गर्भ में विलीन हो जाने के कारण आज उपलब्ध नहीं हो पा रहे हैं । अतएव बहुत अधिक संभव है कि इस मान्यता को साहित्य दर्पण कारने शास्त्रीय रूप अथवा स्वीकृति दे दी हो ; संभव है कि आचार्य विश्वनाथ के पूर्व ऐसे अनेक लक्ष्य ग्रंथों की रचना दो अंकों में की गयी हो जिन्हें देखकर उन्होंने अपने शास्त्रीय विवेचन में उक्त लक्षण को स्वीकार कर लिया हो । अतएव उपर्युक्त तथ्य के प्रकाश में कहा जा सकता है कि लक्ष्य के आधार पर ही लक्षण का निर्माण होता है ।

उक्त प्रहसन के संबंध में दूसरी बात यह है कि, विभिन्न आचार्यों के मतानुसार प्रहसन में अंगी रस हास्य ही होना चाहिये, परन्तु इस प्रहसन में शृंगार रस की प्रधानता का आभास होने लगता है । मैथिली में प्राप्त हस्त लिखित प्रति खंडित रूप में ही उपलब्ध हो पायी है किन्तु संस्कृत 'धूर्त समागम' की प्रस्तावना में स्वयं ज्योतिरीश्वरने ही शृंगार रस की प्रधानता का उल्लेख किया है ।[१]

---

१. नटी ---- (सविनयं) आणवेदु अज्ज जो को एत्थ पबन्धे पहाणो रसो जं उद्दिसिअ गाइस्सं ।

सूत्रधार: -- ननु प्रोत्फुल्ल मालतीमकरन्द सान्द्रा मोदमत्त मधुकर झंकार-मुखरो वसन्त: संततो ज्जृम्भितानंग शृंगार एव । (पृ. ३४)

परन्तु प्रस्तुत प्रहसन के परीक्षण के पश्चात् शृंगार की नहीं अपितु हास्य रस की ही प्रधानता लक्षित होती है ; क्योंकि इसके विभावानुभाव और संचारी भाव विशुद्ध शृंगार रस को पुष्ट करने के स्थान में हमारी काम-वासनाओं को ही उद्दीप्त करते हैं । यदि कुछ अंश में शृंगार को स्वीकार कर भी लिया जाय तो वह केवल अश्लील शृंगार ही होगा । किन्तु हमारे यहां के आचार्यों ने[१] कहा है कि रस या भाव यदि अनौचित्य (लोक-शास्त्र-विरूद्ध) रूप से वर्णित हो तो उसे रसाभास या भावाभास कहा जाता है । अधम पात्र के माध्यम से रत्यादि का वर्णन, प्रधान नायिका का उपनायक के प्रति प्रेम-प्रदर्शन, किसी नायिका का अनेक नायकों के प्रति रत्यादि का वर्णन, नायिका का प्रतिनायक के प्रति प्रेम भाव, अर्थात् उभयनिष्ठत्वेन प्रेम का न होना, तथा मुनि-पत्नी, गुरू-पत्नी या अन्य पत्नी में रत्यादि का वर्णन शृंगार रस के अनौचित्य कहे जाते हैं । इन बातों के समावेश से शृंगार रस की पुष्टि नहीं होती है किन्तु रसाभास हो जाता है । 'धूर्त समागम' में यह अनौचित्य स्नातक-गुरू का संभाषण, अनंगसेना एवं विश्वनगर तथा असज्जाति मिश्र का वार्तालाप, नापित का "मदन मंदिर द्वार" कर्म आदि प्रसंगों में पाया जाता है । अतएव एतद्विषयक तत्वों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत प्रहसन का परीक्षण करें तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसमें शृंगार का रसाभास हो सकता है किन्तु उसकी पुष्टि नहीं होती ।

---

१. अनौचित्य प्रवृत्तत्व आभासो रस भावयो: ।। २६२ ।।
उपनायक संस्थायां मुनिगुरूपत्नी गतायां च ।
बहुनायक विषयायां रतौ तथानुभयनिष्ठायाम् ।। २६३ ।।
प्रतिनायकनिष्ठत्वे तद्वद्धमपात्रतिर्यगादि गते ।
शृंगारे नौचित्यं - - - - - - - - - - - - ।। २६४ ।।
(सा.द., तृतीय परिच्छेद)

इसके विपरीत, इस प्रहसन की रचना शैली, इसके पात्रों के नाम, उनकी चेष्टाएं, उनके मूर्खतापूर्ण कथोपकथन या अन्य विचित्र प्रकार की स्थितियों से हास्य की ही सृष्टि होती है। हास्य रस की प्रधानता होने पर भी इसमें कैशिकी वृत्ति का अभाव रहता है; क्योंकि निन्दनीय, पाखंडी आदि में शृंगार रस का अनौचित्य होने से उन में केवल हास्य-विषयत्व ही होता है।[१] भारतीय आचार्यों की मान्यता है कि स्वयं या दूसरे के विकृत आकार, वाणी, चेष्टा, वेष आदि में विकार देखकर हास की उत्पत्ति होती है। इस हास स्थायी भाव का परिपोष हास्य रस कहलाता है।[२] सम्पूर्ण 'धूर्त समागम' में अश्लील शृंगार के मध्य भी हास्य ही उमड़ आता है। प्रारंभ के मृतागार का बहाना बनाना, विश्वनगर का पेटू के समान झट भोजन की तालिका प्रस्तुत करना, "पडल पयोधर पाकल बार", गुरु-शिष्य का अनंगसेना के लिये उत्तर-प्रत्युत्तर, विदूषक का प्रलाप, असज्जाति मिश्र का चातुरी से अनंगसेना को अपने पास रख लेने पर विश्वनगर का अपना-सा मुंह लेकर रह जाना आदि प्रसंगों से हास्य रस की ही पुष्टि होती है। कुछ प्रसंग ऐसे हैं जिनमें अश्लीलता और वीभत्स चरम सीमा पर पहुंच गये हैं। अनंगसेना के "मदन मंदिर-चौर,"

---

१. हास्यरस प्राधान्येऽप्यत्र न कैशिकी वृत्तिः। निन्द्य पाखंडि प्रभृतीनां शृंगारस्यानौचित्येनाभावात् केवलं हास्य विषयत्वमेव।
(नाट्य दर्पण, द्वितीय विवेक, सूत्र १३१ की व्याख्या)

२. विकृताकृति वाग्वेषैरात्मनोऽथ परस्य वा।
हासः स्यात्परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रिप्रकृतिः स्मृतः।।
(दशरूपक, ४ । ५७)

उसके नीरस पयोधर एवं "मदन-मंदिर" के श्वेत केश-राशि, असज्जाति मिश्र के चौर कर्म से "परिस्खलन" आदि प्रसंगों में शृंगार की अश्लीलता ही नहीं अपितु वीभत्स की सृष्टि होती है । अतएव 'धूर्त समागम' प्रहसन का प्रधान रस - अंगी रस - हास्य ही हो सकता है ; अंग के रूप में शृंगार, वीभत्स और शान्त को माना जा सकता है ।

कथा-वस्तु -------- संस्कृत और मैथिली दोनों में लिखे गये "धूर्त समागम" प्रहसन का रचयिता एक ही है और दोनों की कथावस्तु भी लगभग एक ही है, जो कि संक्षेप में इस प्रकार है -----

परम्परा के अनुसार नान्दी के पश्चात् सूत्रधार प्रवेश कर नाट्यकार एवं उसके आश्रयदाता की प्रशंसा करता है । नटी को बुलाकर उसे वसंत ऋतु के अनुकूल तथा प्रहसन के प्रधान रस शृंगार के गीत गाने के लिये आग्रह करता है । इतने में नेपथ्य से ऐसे व्यक्ति के प्रवेश के गीत सुनाई पड़ते हैं जिसके हाथ में दंड और कमंडलु है, मस्तक पर तिलक है, शरीर पर सुन्दर कषाय वस्त्र शोभा पा रहा है और जो धूर्त के समान इधर उधर देखता हुआ चलता है । सूत्रधार इसका परिचय देता हुआ कहता है कि यह आचार और धर्म से रहित, गणिका-विलासी, उग्र, दंभी, त्रिपुंड लगाये हुए और हाथ में दंड-कमंडलु लेकर पाखंड से लोगों को धोखा देनेवाला विश्वनगर नाम का संन्यासी है । यह संन्यासी अपने एक शिष्य स्नातक के साथ प्रवेश करता है । वसन्त-सौंदर्य की सुषमा से उद्दीप्त होकर स्नातक का शरीर काम से रोमांचित हो जाता है । गुरु के पूछने पर वह ससंकोच

कहता है कि आज प्रात: काल जब से उसने, अप्सराओं के सौंदर्य को लज्जित करनेवाली राजनर्तकी अनंग सेना को देखा है तभी से उसका शरीर कुसुमायुध-वेधित हो गया है । विश्वनगर ने भी हंसते हुए कहा कि जब से उसने सुरत प्रिया नाम की गणिका को देखा है, तभी से वह काम-शर-पीड़ित और विह्वल हो गया है । इसी प्रकार बातचीत करते हुए वे दोनों मृतांगार नामक धनी व्यक्ति के घर भिक्षाटन के लिये जाते हैं ।

मृतांगार यह कहते हुए प्रवेश करता है कि अधिक व्ययशील होने से कुबेर को भी दरिद्र होना पड़ता है , अत: धनियों को चाहिये कि प्राण तक को होम कर दें किन्तु याचकों को कभी कुछ न दें । इतने में ही स्नातक आकर याचना करता है । इस अचानक विपत्ति को आया देखकर मृतांगार उसे टालना चाहता है और बहाना बनाते हुए कहता है कि मेरी पड़ोसिनी ब्राह्मणी को प्रसव हुआ है ; इसलिये अशुचि के कारण वह भिक्षा देने में असमर्थ है । किन्तु गुरु-शिष्य भी कम धूर्त नहीं हैं, वे कहते हैं कि संन्यासियों को अशुचि नहीं लगती ; अत: भिक्षा देने या ग्रहण करने में किसी भी प्रकार का दोष नहीं है जिसका प्रमाण शास्त्र है । किन्तु वह धनिक बारम्बार बहाना बनाता ही जाता है ; अंतत: उन दोनों गुरु-शिष्योंने क्रोधित होकर शाप दे दिया । मृतांगारने शान्त भाव से कहा कि यहां से थोड़ी दूर पर सुरतप्रिया नाम की एक महिला रहती है, उसीके यहां आप लोग भिक्षा की याचना करें ।

यह सुरतप्रिया भी एक धूर्त्ता ही है । संन्यासिनी का वेष बनाकर तथा लोगों को धोखा देकर अपना जीविकोपार्जन करती है । उनके याचना करने पर वह कहती है कि मैं आप लोगों को किस प्रकार की और किस समय में भिक्षा दूं । जब विश्वनगर सुस्वादु भोजन-सामग्री की तालिका प्रस्तुत करने लगता है तो वह अपनी चातुरी से समझ जाती है कि इस व्यक्ति से सरलता से कुछ भी ऐंठा जा सकता है । अतएव वह कहती है कि अन्य वस्तुओं की तो बात ही क्या, मेरे प्राण और शरीर भी अतिथि-सत्कार के लिये समर्पित हैं । इसलिये इन पर आपका ही पूर्ण अधिकार है । कुछ क्षण आप यहां विश्राम करें, तब मैं सभी तरह की भिक्षाएं लेकर आपकी सेवा में उपस्थित होती हूं । सुरतप्रिया की कामुक चेष्टाओं को देखकर, उसके वृद्धा शरीर का उपहास करते हुए स्नातक कहता है कि पयोधर लटक चुके हैं और कटि के नीचे का चिकुर-जाल श्वेत हो चुके हैं फिर भी इस प्रकार की भाव-भंगिमाएं दिखाती है । यहां भोजन में कुछ विलम्ब देखकर स्नातक कुछ क्षण के लिये अनंगसेना से मिलने की इच्छा प्रकट करता है । विश्वनगर भी साथ हो जाता है और वे दोनों उसके यहां पहुंच जाते हैं ।

अनंगसेना के अपूर्व रूप-लावण्य को देखकर विश्वनगर अपना संतुलन खोकर कामुक की-सी चेष्टाएं करने लगता है । अपने गुरु की इस अनधिकार चेष्टा को देखकर स्नातक कहता है कि यह तो मेरी पत्नी है, अत: इस पर इस तरह का भाव रखना आपके लिये अनुचित है । विश्वनगर उसी स्थिति में कहता है कि जब तक किसी मृगाक्षी

की दृष्टि लोगों पर नहीं पड़ती तभी तक वे विवेकशील बने रहते हैं। इस वाग् युद्ध से अनंगसेना हंसती हुई कहती है कि मैं तो धन के अधीन हूं, अब विलम्ब अनावश्यक है। विश्वनगर धनका अभाव बताते हुए अपने शरीर से ही इच्छित सुख प्राप्त करने के लिये कह कर, कामातुरता से उसकी ओर अपलक नेत्रों से देखने लगता है। अनंगसेना और स्नातक दोनों ही उसे समझाते हैं किन्तु वासनाभिभूत विश्वनगर इनकी उपेक्षा कर अनंगसेना के कुचों को पकड़ लेता है। इस अनौचित्य को सहन नहीं कर सकने के कारण स्नातक क्रोध में विश्वनगर से कहता है कि यह आपकी पुत्र वधू है, अत: आपका यह आचरण पाप मूलक है। प्रतिरोध के स्वर में विश्वनगर कहता है कि यह मेरी पत्नी है, अत: यह तुम्हारी मां और गुरू-पत्नी हुई। तुम इसके साथ शृंगार की बातें करने के अधिकारी नहीं हो। इन दोनों के बढ़ते हुए विवाद को देखकर अनंगसेना उन्हें निर्णय के लिये असज्जाति मिश्र के पास जाने का आग्रह करती है।

ये मिश्र महाशय भी एक धूर्त और पाखंडी पंडित हैं। इनके अनुसार संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु "सुरत" ही है। इनका मित्र बंधु वंचक इनसे भी अधिक लम्पट है। वह कहता है कि इस धरातल पर परस्त्री-संभोग में जितना आनन्द प्राप्त होता है उतना मोक्ष मिलने पर भी प्राप्त नहीं हो पाता। ये दोनों आपस में इस प्रकार की बातें कर ही रहे हैं कि इनके समक्ष वे दोनों गुरू-शिष्य निर्णय के लिये उपस्थित होते हैं। इन दोनों के बयानों को सुनकर असज्जाति मिश्र आदेश के स्वर में कहते हैं कि निर्णय के दिन तक

151

अनंगसेना को निर्णायक के पास रहना ही उचित और न्याय संगत है । अपने पास उसे बैठाकर निर्णय देते हुए कहते हैं कि यह अनंगसेना आप दोनों में से किसी की भी नहीं है ; क्योंकि बहुत दिन पूर्व मैंने स्वप्न में ही इसके साथ क्रीड़ा की थी । उसी दिन से हम दोनों का परिचय है और अब वह मेरी प्राण वल्लभा है । कुछ एकान्त पाकर बंधुबंचक अनंगसेना से कहता है कि किसी न किसी प्रकार ये सब निकम्मे और निठल्ले हैं । अत: तुम इन लोगों के साथ समागम का विचार - त्यागकर मेरे साथ चलो । खिझती हुई अनंगसेना कहती है यथार्थत: धूर्त समागम रूपी प्रहसन का अभिनय ही हो गया । विश्वनगर और स्नातक निराश होकर पुन: सुरतप्रिया की खोज में चले जाते हैं ।

इतने में मूलनाशक नाम का हजाम अपनी धूर्तता का परिचय देता हुआ प्रवेश करता है और चारों ओर सतर्कता से देखता हुआ अनंगसेना से कहता है कि मैंने अनेक बार तुम्हारे "मदन-मंदिर" के केशों का परिष्कार किया है जिसका वेतन अभी तक नहीं मिला है । यदि शीघ्र ही मुझे अपना वेतन नहीं मिल जाता तो विवश होकर तुम्हें राजा के समक्ष उपस्थित करना पड़ेगा । इस पर अनंगसेना मुस्कुराती हुई कहती है कि अभी असज्जाति मिश्र के पास से तुम्हें वेतन मिल जायेगा ।

बंधुबंचक उस हजाम का वर्णन करते हुए कहता है कि उसके होठ एवं नाक कटे हुए हैं, गाल सूजे हुए हैं, बायें आंख से काना है, और एक हाथ भी गल कर गिरने ही वाला है, ऐसे ही विकृत

रूप वाले हजाम का नाम मूलनाशक है । मूलनाशक के आने पर जब असज्जाति मिश्र उसे अपनी दाढ़ी बना देने के लिये कहते हैं तो वह पहले अपने वेतन की ही मांग करता है ; क्योंकि केशों के परिष्कार करते समय यदि "परिस्खलन" के कारण उनकी मृत्यु हो जाये तो उसका वेतन नहीं मिल सकेगा । मिश्र महाशय अपनी थैली से थोड़ी गुंजाकिनी (गांजा) निकाल कर देते हैं । मूलनाशक उनके हाथ-पैरोंको बांध कर बाल काटने का अभिनय करता है । असज्जाति मिश्र वेदना से कराहते एवं मूलनाशक को कोसते हुए कहते हैं कि तुम इस प्रकार से बाल साफ करते हो कि मेरा हृदय दलित हो रहा है, चित्त न जाने कैसा मचल रहा है, सारे शरीर की हड्डियां दुख रही हैं, अब तो मेरे प्राण निकले जा रहे हैं । उनके बेहोश हो जाने पर मूलनाशक उन्हें ठुकरा कर चल देता है । बंधुबंचक आकर उनके बंधनों को खोल देता है और भरत वाक्य के रूप में शस्य-श्यामला धरा आदि की कामना करते हुए चला जाता है ।

धूर्त समागम और हास्यार्णव प्रहसन : एक दृष्टि --------

'धूर्त समागम' और 'हास्यार्णव' प्रहसन की कथा बहुत कुछ मिलती जुलती है । 'हास्यार्णव' प्रहसन के रचयिता जगदीश्वर भट्टाचार्य का समय ज्योतिरीश्वर से बहुत पश्चात् का है । अतएव संभावना हो सकती है कि 'हास्यार्णव' की कथा 'धूर्त समागम' से प्रभावित है । इस प्रहसन में भी प्रारंभ के शिव-स्तुति के पश्चात् राजा अभयसिंधु की राज्य-व्यवस्था का बड़ा ही हास्यपूर्ण वर्णन किया गया है । इसके पात्रों के नाम भी तद्वत् गुणानुरूप एवं हास्य युक्त हैं, जैसे,

२३

अयथार्थवादी नाम का सैनिक, रण जम्बूक नाम का सेनापति, कुमति वर्मा नामक महामंत्री, विश्व भण्ड नामक गुरू, कलहांकुर नामका शिष्य, बन्धुरा और मृगांकलेखा नामकी वेश्या, रक्त कल्लोल नामका नापित तथा मिथ्यार्णव नाम का ब्राह्मण। नापित के द्वारा दर्पण दिखाने की प्रथा का उल्लेख उक्त प्रहसन में भी किया गया है।

कलहांकुर वेश्या मृगांक लेखा पर आसक्त है, अत: जब उसे विश्व भण्ड आदेश देता है कि वह मृगांक लेखा से कहे कि वह रात में उसके घर आकर संभोग सुख को प्राप्त करे तो वह स्वयं उस वेश्या को प्रगाढ़ आलिंगन में लेकर चुम्बन करने लगता है। यह अशिष्टता देखकर गुरू क्रोधित हो जाता है और दोनों के बीच, धूर्त समागम के समान ही, हास्यपूर्ण वाद-विवाद चलता है। बन्धुरा नाम की वेश्या आकर कहती है कि मृगांक लेखा के कामशास्त्राध्यापक श्री मदनान्ध मिश्र आप दोनों के झगड़े का निर्णय करेंगे। श्री मदनान्ध मिश्र उस मृगांक लेखा को देखकर मदनान्ध हो जाते हैं और तत्क्षण ही उसी स्थल पर उसके साथ "सुरत क्रिया" सम्पन्न करने लगते हैं। इसे देखकर वे दोनों गुरू-शिष्य उदास हो गए और अपना-सा मुंह लेकर चलते बने। इस "क्रिया" के पश्चात् पंचायत होती है, जो धूर्त समागम के समान ही है। इसके अतिरिक्त नापित का "मदन-मंदिर - क्षौर-कर्म", मिथ्यार्णव ब्राह्मण के प्रवेश का प्रसंग -- जिसमें वह कहता है कि एक ब्राह्मण एक धोबिन के साथ व्यभिचार कर रहा था, जिसे देखकर लोगोंने उसे पत्थर से मार डाला, अत: उसे ब्रह्म हत्या का

दोष लगना चाहिये ; इतने में उसकी दृष्टि मृगांक लेखा पर पड़ती है और वह कामाभिभूत हो जाता है, किन्तु धूर्तों की मंडली को देखकर मन मसोसकर रह जाता है और कहता है कि यहां धूर्तों का जमघट हो गया है ----- तथा इसी प्रकार के अन्य प्रसंगों का वर्णन दोनों में समान रूप से किया गया है ।

उपर्युक्त तथ्यों के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जगदीश्वर भट्टाचार्य अवश्य ही 'धूर्त समागम' की कथा से परिचित रहे होंगे और उससे प्रभावित होकर विषय-वस्तु को भी अपनाया होगा । दूसरी संभावना यह भी हो सकती है कि उस समय में प्रहसन के लिये इसी प्रकार की अश्लील कथाओं को अपनाया जाता रहा हो ।

'धूर्त समागम' प्रहसन की खंडित प्रति में मैथिली के कुल बारह गीत हैं ; जिन में से कुछ तो संस्कृत के श्लोकों के पद्यानुवाद मात्र हैं और शेष स्वतंत्र भाव को लेकर रचे गये हैं । "जयदेव के गीत गोविन्द के प्रभाव तथा चर्यापद के अनुकरण पर राग और ताल का निर्देश स्पष्टत: परिलक्षित होता है । इसकी भाषा वर्ण रत्नाकर के समान नहीं किन्तु विद्यापति के समान है ; और कई पद के रूप तो आधुनिक मैथिली के समान व्यवहृत हुए है । इस में प्रयुक्त प्रवेश गीत, राज वर्णना गीत और ऋतु वर्णना गीत कीर्तनियां नाटक के गीतों के समान हैं ।"[१] ये गीत प्रहसन की कथा वस्तु के विकास में बाधक नहीं किन्तु सहायक सिद्ध होते हैं, साथ ही प्रवेश गीतों से पात्रों के व्यवहार एवं स्वभाव का परिचय

-------------------------

१. प्रस्तुत प्रहसन की भूमिका, पृ.१०

२५

भी मिल जाता है । उदाहरण के रूप में उस प्रसंग को लिया जा सकता है जब विश्वनगर और स्नातक अनंगसेना को लेकर असज्जाति मिश्र के पास न्याय के लिये जाते हैं । असज्जाति मिश्र अनंगसेना के रूप से मोहित होकर किस भाँति कपट का जाल फैलाता है, इसका अत्यन्त रोचक चित्र निम्नलिखित गीत द्वारा प्रस्तुत किया गया है -----

देशाष रागे ।। एकताली ताले ।।

तोहरि भो नहि के सनातक भगव,
तोहरि नहि नारी ।।
हमरिए हमरा लग अक्ष बैसलि,
परतष हलिज विचारि ।। ध्रुवं ।।
परूकां सपने हमे अवलोकलि,
हमरि तेहि के न जाने ।।
हारल भगव सनातके दुहु जने,
तन्हि असजातिक थाने ।।
कविशेषर जोतिक एहु गावे,
राए हरसिंह बुफ भावे ।।[१]

उपर्युक्त गीत के माध्यम से ही विश्वनगर एवं स्नातक के चले जाने की बात बताकर कथावस्तु में स्वाभाविक विकास लाने की चेष्टा की गयी है ।

प्रवेश गीत के द्वारा पात्र स्वयं अपना परिचय प्रस्तुत करता है, जिससे उसके व्यवहार एवं स्वभाव की जानकारी मिल जाती है

---------------------------

१. मैथिली धूर्त समागम - पृ. २३

और साथ ही, जैसा कि कहा जा चुका है कि उससे हास्य भी उत्पन्न होता है, जो निम्नलिखित गीत से प्रकट है -----

अहलि है म्म वासी ।
परधना बन्धि रवाथि निवासी ।। ध्रुवं ।।
कुश कमण्डलु पूढ़ा सांख ।
काकन बाह गरा रूदराख ।।
चांदन वैन्दा लाइ सुललाट ।
पथिक ठकथि वैसलि बाट ।।
आरब आहर धरम मोख ।
मुरख समर्थ रखहि सोख ।।
सुनिअ सुरत प्रिया रीति ।
हसइ सिरि गणेसर मन्ति ।।[1]

एक अन्य गीत के माध्यम से, जो संस्कृत श्लोक का भावानुवाद मात्र है, वृद्धा किन्तु कामुका सुरत प्रिया के शरीर का हास्यपूर्ण एवं मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है, जो इस प्रकार है -----

पक्वा: कुन्तल राजय: कटकटा चामौ कपोलावुभा -
वेतस्या: स्तनमण्डलं निपतितं शुष्कानितम्बस्तटी ।
दृकूपातस्मितभाषितै: शिव शिव प्रस्तौति नेत्रोत्सवं,
ब्रूम: किं किं करवाम वेति किमियं दुष्टा जरत्तापसी ।।

-------------------------

१. मैथिली धूर्त समागम - पृ.३

ललित रागे ।। एकताली ताले ।।

चल चल चलम्मा विफल तजी ।
सिदाा मह बोलसि मरवास राजी ।। ध्रुवं ।।
गाल पचकि लवि गेलजौक आ ।
तइअओ न छाड़सि अपनु कि मया ।।
भूषालि किंचिनि सन तोहर चान ।
कके विहुसि हरि लेसि परान ।।
पहज पयोधर पाकल बार ।
स्वि सिव कत करद अनविकार ।।
कविशेषार जोतिक एहु गाव ।
रार हरिसिंह बुफाए रस भाव ।।[१]

जगदीश्वर भट्टाचार्यने भी अपने 'हास्यार्णव' प्रहसन में इसी प्रकार बन्धुरा नामकी वृद्धा वेश्या के शरीर का हास्यपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया जो ज्योतिरीश्वर के प्रभाव के परिचायक होने के कारण नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं -----

प्रलम्बित पयोधरा वातरजाविकारास्पदं ,
सदा विगत हंसका तिमिरलुप्ततारा रूचि: ।
तिरस्कृतनिशाकरा गतत्रया इयं बन्धुरा,
सदा सपदि दृश्यतां जलधरागमश्रीरिव ।।
स्तनौ तुंगौ निपतितौ काम संग्राम मर्दितौ ।
पुरस्तादवलोक्यास्या मगं शुष्कं भयादिव ।।[२]

---

१. प्रस्तुत प्रहसन, पृ.७

२. हास्यार्णव प्रहसन (प्रथम संस्करण, चौखम्बा, वाराणसी) - पृ.२३

उपर्युक्त विवेचन से प्रकट है कि इन कृतियों के द्वारा समकालीन जन - जीवन की तात्कालिक विविध प्रकार की स्थितियां प्रकाश में आती हैं । ज्योतिरीश्वरने अपने प्रतिभाशाली व्यक्तित्व से न केवल परवर्ती काल के हिन्दी-मैथिली के नाटककारों को प्रभावित किया किन्तु संस्कृत के नाटककारों पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित किया । आज तक ये 'वर्णरत्नाकर' के माध्यम से केवल गद्य लेखक के रूप में ही हिन्दी जगत् से परिचित रहे हैं किन्तु इनका यह प्रहसन इनके कवि रूप को भी प्रकाशित करता है । अतएव गद्य - पद्य के माध्यम से साहित्यिक विधा प्रस्तुत करनेवाले ये प्रथम साहित्य-मनीषी हैं । इस दृष्टि से ज्योतिरीश्वर एवं इनके प्रहसन का निजी एवं ऐतिहासिक महत्व स्वयं सिद्ध है ।

'धूर्त समागम' प्रहसन के महत्व एवं उसकी विशेषताओं को हम पूर्ववर्ती विवेचन में लक्ष्य कर चुके हैं । इसकी सब से बड़ी महत्ता इसमें है कि सर्वप्रथम इसी प्रहसन में संस्कृत-प्राकृत के साथ साथ 'देसिल वयना' के महत्व एवं उसके लालित्य को स्वीकार कर समयोचित समावेश हुआ और वह भी गीतों के रूप में । खड़ी बोली के लिये बहुत दिनों तक यह समस्या रही कि उसमें काव्य-भाषोचित शक्ति है अथवा नहीं । किन्तु संस्कृत-अपभ्रंश के शासन काल में भी ज्योतिरीश्वरने क्रांतिकारी कदम उठाकर न केवल उस भाषा की प्रौढ़ता सिद्ध की अपितु उन्होंने यह उदाहरण भी प्रस्तुत किया कि प्रत्येक भाषा में काव्य-व्यवहृत होने की शक्ति विद्यमान रहती है ; केवल प्रयोग कर्ता की क्षमता एवं सहृदयता की आवश्यकता रहती है ।

२. कीर्तनियां शैली का प्रथम नाटक : पारिजात हरण -----

कतिपय विद्वानोंने ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि उमापति उपाध्याय का स्थित काल विद्यापति से पूर्व है ।[1] अत: इन्हीं विद्वानों के मन्तव्य के आधार पर 'पारिजात हरण' का विवेचन 'गोरक्षा विजय' से पूर्व ही प्रस्तुत किया जा रहा है । द्वितीयत: यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि सर्वप्रथम ग्रियर्सन महोदयने इस नाटक का प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित किया, पश्चात् चन्दा झा और चेतनाथ झाने भी इसका सम्पादन किया । अभी, कुछ दिन पूर्व ही श्री बजरंग वर्मा, एम.ए., ने भी विद्वत्तापूर्ण भूमिका के साथ, 'नव पारिजात मंगल' के नाम से, उदयाचल, आर्यकुमार पथ, पटना से अपने सम्पादकत्व में प्रकाशित किया है । इसमें श्री वर्मा ने उपर्युक्त तीनों संस्करणों के पाठ भेदों को उपस्थित किया है । अत: प्रस्तुत अध्ययन के लिये इसी संस्करण को आधार बनाया गया है ।

प्रस्तुत नाटक का प्रचलित नाम 'पारिजात हरण' है किन्तु नाटककार स्वयं, प्रस्तावना में, इसे 'नवपारिजात मंगल' के नाम से अभिहित करता है ।[2] इस नाटक की कथावस्तु के परीक्षण से भी

---

१. (क) हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास (डा.ओझा) पृ.३६५-६६
(ख) हिन्दी साहित्य और बिहार, प्रथम खंड (सं. शिवपूजन सहाय) - पृ.३३-३४
(ग) जनरल ऑफ बिहार रिसर्च सोसायटी के पृ.४३ पर प्रो. राधाकृष्ण चौधरी का संस्कृत ड्रामा इन मिथिला शीर्षक लेख ।
(घ) नव पारिजात मंगल (सं.बजरंग वर्मा) - पृ.३२

२. आदिष्टोऽस्मि - - - - - - - - - - - यथा उमापत्युपाध्याय विरचितं नवपारिजात मंगलमभिनय वीररसावेशं शमयन्तु भवन्तो भूपालमंडलस्य ।
(नवपारिजात मंगल, उत्तरार्ध, पृ.६)

उक्त मत की ही पुष्टि होती है ; क्योंकि वृक्ष-हरण के पश्चात् भी घटनाएं घटित होती हैं और सत्यभामा का मंगल होता है। 'नव' शब्द से नाटककार संभवत: यह संकेत देना चाहता है कि उसके पूर्व भी लोक भाषा में उक्त विषय वस्तु को अपनाकर कुछ लेखकोंने रचनाएं प्रस्तुत की होंगी, जो आज उपलब्ध नहीं हैं। उसी कथावस्तु को उमापतिने नवीन ढंग से उपस्थित किया, अत: इसका नाम उन्होंने 'नव पारिजात मंगल' रखा। श्री बजरंग वर्माने[१] अनेक प्रमाणों के आधार पर यह मन्तव्य उपस्थित किया है कि उक्त कथावस्तु को अपना कर संस्कृत में अनेक विद्वानोंने रचनाएं प्रस्तुत की हैं किन्तु उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सर्व प्रथम उमापति उपाध्यायने ही लोक भाषा में इस घटना को नाटक का रूप दिया।

पारिजात हरण की कथा किंचित् परिवर्तन के साथ विभिन्न पुराणों में वर्णित है। उमापतिने अपनी रचना का आधार हरि वंश पुराण की कथा को बनाया है, किन्तु उन्होंने अपनी प्रतिभा के आधार पर, कतिपय इस प्रकार के परिवर्तन भी किये हैं जिनके कारण घटना में स्वाभाविकता, सरलता और नाटकीयता का समावेश अनायास ही हो गया है, जो निम्नलिखित संक्षिप्त कथासार से प्रकट है -----

---------------------------

×१. आदिष्टो स्मि - - - - - - - - - - - यथा उमापत्युपाध्याय विरचितं नवपारिजातमंगलमभिनीय वीररसावेशं शमयन्तु भवन्तो भूपालमंडलस्य। (नवपारिजात मंगल, उत्तरार्ध, पृ. ४२)

१. वही, पूर्वार्द्ध, पृ. ४२

एक दिन जब कृष्ण अपनी प्रियतमा रुक्मिणी के साथ रैवतोपवन में, वसन्त की शोभा का निरीक्षण करते हुए, विहार कर रहे हैं, उसी समय नारद का आगमन होता है । कुशल - समाचार के पश्चात् कृष्ण नारद के हाथ में रखे हुए सौरभ युक्त पारिजात पुष्प की महत्ता पूछते हैं । नारद उन्हें उसकी महत्ता बताते हुए उस पुष्प को उन्हें उपहार में दे देते हैं । कृष्ण उसे रूक्मिणी की ओर बढ़ा देते हैं, जिसे प्राप्त कर वे फूली नहीं समातीं । इधर कृष्ण से मिलने के लिये आती हुई सत्यभामा लता की ओट से इस सारी घटना को देख लेती हैं और इसे अपना अपमान समझकर, सिर में पीड़ा के व्याज से अपने मान का संकेत देती हुई अपने निवास स्थान को चली जाती हैं ।

नारद के भोजनादि की समुचित व्यवस्था के पश्चात् कृष्ण सत्यभामा के शयन कक्ष के समीप आते हैं और अपमान के कारण उनकी व्याकुलता देखकर वे उनके चरण-तल को सहलाने लगते हैं । सत्यभामा पूर्वोक्त घटना का स्मरण दिलाती हुई मान में विपरीत मुख होकर बैठ जाती हैं । कृष्ण के सांत्वना देने पर वे बताती हैं कि इस अपमान का समाधान एक मात्र पारिजात-तरु ही है, जिसके बिना उनका जीवित रहना असंभव है । कृष्ण तत्क्षण ही नारद को बुलाकर तथा पारिजात तरु की याचना का सन्देशा देकर अमरावती जाने का अनुरोध करते हैं । वे जानते हैं कि युद्ध के बिना उस वृक्ष को प्राप्त करना असंभव है, अत: वे अर्जुन को युद्ध सज्जा से सज्जित होकर बुला भेजते हैं और सुभद्रा को भी सत्यभामा के सांत्वनार्थ जाने का सन्देशा भेजते हैं । इन्द्र का उत्तर पाकर वे क्रोधावेश में गरूड़ का स्मरण करते हैं और अर्जुन के साथ पारिजात वृक्ष के हरण के लिये प्रस्थान करते हैं ।

एकाएक सत्यभामा का वामांग फड़कता है और उधर नारद विजय का समाचार लिये समुपस्थित होते हैं। सत्यभामा के आग्रह करने पर वे युद्ध और पारिजात-हरण की घटना का वर्णन करते हैं। इनका वर्णन समाप्त होते ही कृष्णार्जुन उस तरू को लिये हुए उपस्थित होते हैं। सत्यभामा उसे प्राप्तकर विधिवत् उसकी पूजा करने और महिमा का गान करने लगती हैं। नारद के यह कहने पर कि इस तरू के नीचे प्रिय-वस्तु के दान से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है, सत्यभामा और सुभद्रा अपने प्रियतमों का दान कर देती हैं। नारद प्रसन्न होते हैं कि अब कृष्णार्जुन उनके दास हैं ; अत: वे उन्हें अपने चरणों को दबाने का आदेश देते हैं। अब नारद को इस बात की चिन्ता होती है कि अखिल विश्व के पालन कर्ता एवं वृकोदर के अनुज अर्जुन को वे किस प्रकार खिला सकेंगे। अतएव वे एक एक गाय लेकर पुन: उन दोनों को सत्यभामा और सुभद्रा के हाथ बेच देते हैं। इस प्रकार नारद के आशीर्वाद से सत्यभामा का सम्मान पूर्ण हो जाता है।

हरिवंश पुराण [१] में वर्णित उक्त घटना से प्रस्तुत नाटक में जो अन्तर दिखायी पड़ते हैं, वे इस प्रकार हैं -----

१. हरिवंश में रूक्मिणी के उपवास व्रतोदयापन के उपलक्ष्य में कृष्ण रैवतक-पर्वत पर आते हैं ; किन्तु प्रस्तुत नाटक में वे वसन्त-विहार के लिये आये हुए हैं। नाटक में नारद अपने आगमन की सूचना द्वारपाल के साथ भेजते हैं, किन्तु पुराण में वे एकाएक उनके निकट उपस्थित होते हैं।

---

१. विशेष विवरण के लिये द्रष्टव्य हरिवंश , विष्णु पर्व , अध्याय - ६४-७६

२. पुराण में नारद स्वयं पारिजात पुष्प रूक्मिणी को देते हैं, जिसे वे अपने बालों में लगा लेती हैं ; किन्तु नाटक में नारद के द्वारा उपहार में प्राप्त उक्त पुष्प कृष्ण उन्हें देते हैं । पुराण में सत्यभामा की सखियां यह घटना उन्हें बताती हैं, जब कि नाटक में वे स्वयं लता-ओट से सारी घटना को देखती हैं ।

३. पुराण में, कृष्ण स्वयं पारिजात तरू ले आने की बात, सत्यभामा से उनकी सांत्वना के लिये कहते हैं और तत्क्षण ही नारद का स्मरण करते हैं । उनके आने पर वे उन्हें इन्द्र के निकट जाने का निवेदन करते हैं जिस पर नारद उन्हें अनेक प्रकार से समझाते हैं । किन्तु नाटक में सत्यभामा कहती हैं कि मान का समाधान एक मात्र पारिजात-तरू ही है । कृष्ण द्वारपाल के द्वारा नारद को बुला भेजते हैं । नारद के समझाने का उल्लेख नाटक में नहीं है । अर्जुन और सुभद्रा का प्रसंग इस नाटक की निजी विशेषता है ।

४. पुराण में, कृष्ण और इन्द्र के युद्ध से सम्पूर्ण सृष्टि में हाहाकार मचने पर ब्रह्मा, कश्यप और अदिति मध्यस्थता करने के लिये आते हैं, जिसका वर्णन प्रस्तुत नाटक में नहीं है । इस प्रकार के कुछ और भी गौण अन्तर हैं ।

<u>समीक्षा</u> ----- उपर्युक्त अन्तर के स्थलों के विश्लेषण से स्पष्टत: लेखक की मौलिकता और नवीन प्रसंगोद्भावना प्रकाश में आ जाती हैं । नवीन प्रसंगों के समावेश से प्रस्तुत रचना में नाटकीय तत्व निखर उठा है ।

जैसा कि कहा जा चुका है कि बंगाल में प्रचलित कीर्तन का प्रभाव मिथिला के नाट्य-साहित्य पर पड़ा है, अत: संभावना यही है कि उसी से प्रभावित होकर उमापतिने ही सर्वप्रथम उसे नाट्य रूप दिया होगा। कालान्तर में कीर्तन गानेवाले अभिनेताओं की मंडलीने कीर्तन-प्रणाली पर नाटक के इस नये रूप का अभिनय प्रस्तुत किया होगा, जिसके परिणाम स्वरूप इस शैली की रचना को कीर्तनियां नाटक के नाम से अभिहित किया गया होगा। कुछ विद्वानों का मत है कि कीर्तनियां शैली के नाटक के पुरष्कर्ता उमापति, भगवान् कृष्ण की मूर्ति के समक्ष कीर्तन के रूप में प्रस्तुत नाटक के गीतों को गाते और तदनुरूप अभिनय भी किया करते थे। अत: अपनी धार्मिकता, गीतात्मकता एवं कीर्तन-शैली के कारण इसे कीर्तनियां नाटक कहा गया और इस शैली पर लिखे गये परवर्ती काल के नाटकों को भी उक्त नाम से ही अभिहित किया गया।[१]

आलोच्य काल में भागवत् धर्म अथवा वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव शनै: शनै: बढ़ रहा था। संभवत: जन-नैकट्य प्राप्त करने के लिये इसमें वज्रयान के परकीया-भाव को ग्रहण किया गया, जिसके प्रसार में जयदेव के गीत गोविन्द के कोमल कान्त पदावलीने भी पर्याप्त मात्रा में योगदान किया। इनके कोमल एवं सरस भावों से गुंफित पद जन-हृदय, विशेषत: भावुक भक्त-हृदय, के सुप्त मधुर भावों को जागृत करने में सशक्त और सफल सिद्ध हुए।

---

१. द्रष्टव्य, हिन्दी साहित्य को बिहार की देन, प्रथम खंड (प्रो. कामेश्वर शर्मा), पृ. १८७

३५

अत: उमापतिने कृष्ण चरित को अपनाकर तथा उसे नाटक का रूप देकर भक्ति के प्रसार में योग दान किया । प्रस्तुत नाटकके विभिन्न गीतों पर जयदेव की शैली के प्रभाव से उक्त मत की पुष्टि हो जाती है ।

पूर्ववर्ती पृष्ठों पर बताया गया है कि नाट्य-साहित्य के संक्रान्ति काल में शास्त्रीय एवं जन नाट्य शैलियों में तात्विक मिश्रण हो रहा था । अतएव उमापति के प्रस्तुत नाटक में दोनों का समाहार होने से किसी एक शैली पर इसकी आलोचना नहीं हो सकती । शास्त्रीय शैली के अनुसार नान्दी, प्रस्तावना, पात्रों का प्रवेशादि क्रम तथा भरत वाक्य का विधान किया गया है । पताका और प्रकरी के अतिरिक्त शेष तीन अर्थ प्रकृतियों एवं पंच कार्यावस्थाओं का पालन भी दृष्टिगत होता है । जन नाटकीय शैली के अनुकरण पर सूत्रधार का स्वरूप, नाटक का रचना-विधान, गीतों की बहुलता आदि का समावेश हुआ है । कीर्तनियां नाटक मुख्यतया सर्वसाधारण के लिये लिखे जाते थे, साथ ही विद्वानों के मनोरंजन का भी ध्यान रखा जाता था । अतएव कथा को उलझन से दूर रखना आवश्यक था और संस्कृत-प्राकृत के साथ मैथिली गीतों का प्रयोग वांछनीय था । उमापतिने जन-सामान्य को दृष्टि में रखकर ही इस नाटक की रचना की, जिसमें इन्हें पूर्ण सफलता भी मिली । यही कारण है कि इनके विभिन्न पद विद्यापति के सदृश ही जन-सामान्य एवं विद्वन् मंडली में समान रूप में समादृत हैं ।

३. चरित्रात्मक नाटक : गोरदा विजय -----

प्रस्तुत नाटक वीर पुस्तकालय, काठमाण्डू में सुरक्षित है और ताल पत्र पर १२×२ पृष्ठों में लिखा गया है । नेपाल के महाराजाधिराज की अनुकम्पा से फोटो प्राप्त कर डा. उमेश मिश्र तथा डा. जयकान्त मिश्रने इसका सम्पादन कर तीरभुक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद-२ से प्रकाशित भी किया है । ताल पत्र पर लिखित प्रस्तुत नाटक के बीच में - दो लकड़ी के पट्टों के बीच पत्रों को सुरक्षित रखने के लिये -- क़ैद किया गया है । अनेक बार खोलने तथा बन्द करने के कारण क़ैद कुछ बड़ा हो गया है, जिससे आसपास के अक्षर घिस जाने से अस्पष्ट हो गये हैं । पत्रों के दोनों किनारों को कीड़ोंने नोच-खसोट कर जर्जरित बना दिया है, अतएव दोनों किनारे के अक्षर भी अस्पष्टता के कारण ठीक से पढ़े नहीं जाते । यह विवरण देने का कारण यह है कि प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को भी काठमाण्डू जाने पर उक्त नाटक की हस्त लिखित प्रति को पढ़ने एवं टिप्पणी लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ । डा. मिश्र द्वय तथा इन पंक्तियों के लेखक के पढ़ने में कुछ अन्तर आ गया है । अतएव इन पाठ भेदों को विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है ।

पृष्ठ २ क पर डा. मिश्र का पाठ इस प्रकार है -----

वस्तुति भुगुति ( ? ) बहु रस सम सेवा ।

इस पंक्ति को लेखकने "युगुति भुगुति दुहु रस सम सेवा" पढ़ा है ।

एक तो "वस्तुति" शब्द से अर्थ भी स्पष्ट नहीं होता और दूसरी बात यह है कि इसी पद की सातवीं पंक्ति में "युगुति कारणे

३१

मेलाह जटाधारी, भुगुति कारणो अर्ध तनु धर नारि" पाठ है । अतएव "भुगुति" शब्द के आगे प्रश्न वाचक चिन्ह नितान्त अनावश्यक प्रतीत होता है ।

इसी पृष्ठ पर "दूणा", "पूणा", "दिल ( ? ) सासा" के स्थान पर लेखकने क्रमश: "दून", "पून" और "दिग्वासा" पढ़ा है । इसके अतिरिक्त इसी पृष्ठ पर "द्वादशंक दय शशि मेषार मेला ।। ध्रुवं ।।" सबसे ऊपर की पंक्ति है जिसका उल्लेख सम्पादक द्वयने नहीं किया है । पुन: इसी पृष्ठ पर "योग तेजि रे युवति = तिनाथ" को लेखकने "योग तेजि रे युवति शत साथ" पढ़ा है ।

पृष्ठ ३ क पर डा. मिश्र द्वय का पाठ इस प्रकार है -----

"तर्हि नृत्यारम्भ: - - - - = - - - द्यौ रम्भोधरा क्रान्ता भूमिश्च शक्करावर्ती । न गोष्ठी तल भूजि ( ? यि) ष्ठा किं न नृत्यामि हे नटा : ।।"=

इन पंक्तियों को स्वीकार कर लेने से इनका अर्थ प्रसंग के एकदम विपरीत हो जाता है । लेखक का पाठ निम्न प्रकार का है, जिसका अर्थ प्रसंगानुकूल ही प्रतीत होता है ।

"तर्हि नृत्यारम्भ: ------------- यत:, न द्यौरम्भोधराक्रान्ता न भूमि: शर्करावती । न गोष्ठी तल भूजि (यि ?) ष्ठा, किं न नृत्यामि हे नटा : ।"

(अर्थात् न आकाश ही मेघाच्छन्न है, न भूमि ही कंकरीली है और न इन श्रोताओं की मंडली में अधिक दुष्ट ही हैं । हे नट, तब हम क्यों न नृत्य करें । अर्थात् इस शान्त और सुन्दर स्थान एवं पात्र को प्राप्त कर नृत्याभिनय की योजना उपयुक्त ही है । )

पृष्ठ ६ क तथा ७ ख की दो तीन पंक्तियों को लेखक, अक्षरों की अस्पष्टता के कारण, पढ़ नहीं सका, जिनका उल्लेख सम्पादक द्वयने किया है ।

पृष्ठ १० क के "विह्वलता कतहु नहि थेघ" को लेखकने "विनु तरुनता काहु नहि थेघ" पढ़ा है और अंतिम पृष्ठ पर "गोरख" तथा 'शीषा' के स्थान पर "गोरषा" और "शिषा" पढ़ा है ।

उपर्युक्त पाठ भेदों के संक्षिप्त विवरण से प्रकट है कि फोटो प्राप्तकर इस नाटक का सम्पादन करने पर भी भ्रमवश सम्पादक द्वय से कतिपय त्रुटियाँ रह गयीं हैं । इन पृष्ठों के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि सभी पृष्ठों पर इसी प्रकार की त्रुटियाँ रह गयी हों । इसके अतिरिक्त सम्पादक द्वयने कतिपय स्थलों पर, बिना किसी पाद टिप्पणी के, मूल पाठ के स्थान पर आधुनिक मैथिली का रूप दे दिया है, जैसे 'सुछन्द' के बदले 'स्वच्छन्द', 'काहु' के बदले 'कतहु' आदि । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें भाषा के आधुनिकीकरण पर अधिक बल दिया गया है । अत: ऐसी परिस्थिति में लेखकने दोनों के तुलनात्मक अनुशीलन के साथ साथ अपने निजी अनुशीलन से प्राप्त सामग्री को ही प्रस्तुत अध्ययन का आधार बनाया है ।

<u>कथावस्तु</u> ----- 'गोरक्षा विजय' की कथावस्तु, गोरक्षानाथ तथा इनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के संबंध में प्रचलित अनेक लोक कथाओं तथा फयजुल्ला कृत 'गोरक्षा विजय' नामक काव्य से मिलती जुलती है । अत: एतद्विषयक संक्षिप्त विवरण यहां आवश्यक होगा । विवेचन की

सुविधा के दृष्टिकोण से यहां सर्व प्रथम इतर सूत्रों से प्राप्त कथावस्तु को प्रस्तुत किया जा रहा है ।

नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक तथा महान् योगी मत्स्येन्द्र नाथ एवं उनके शिष्य गोरक्षा नाथ की कथाएं अनेक रूपों में, भारत वर्ष के प्रत्येक कोने में प्रचलित हैं । इन दन्त कथाओं में परस्पर विरोधी तथा अनैतिहासिक तथ्यों का समावेश अवश्य हो गया है, किन्तु इन सब में केवल एक ही बात की समानता है और वह यह कि गोरक्षा नाथ अपने समय के सर्वाधिक प्रतिभाशाली एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व के धर्म प्रवर्तक थे । डा.हजारी प्रसाद द्विवेदीने अपने 'नाथ सम्प्रदाय' नामक ग्रंथ में जो एतद्विषयक विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है, उसे संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है -----

इनके अनुसार शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित महापुरुष भारत वर्ष में दूसरा नहीं हुआ ।[१] इनके समय में भारतीय धर्म-साधना की अवस्था तथा शुद्ध जीवन की सात्विक वृत्ति की भावना अपनी निम्नतम सीमा तक पहुंच चुकी थी । गोरक्षा नाथने इन सामाजिक कुरितियों पर निष्ठुर प्रहार किया । कुरूढ़ियों पर प्रहार करते समय इन्होंने कहीं भी अपनी निर्बलता नहीं दिखायी । पूर्व प्रचलित धर्म - साधना के मार्गों से च्युत लोगों को इन्होंने, अनेक मार्गों से उचित भाव ग्रहण करते हुए, अनुप्राणित किया । ये कट्टर ज्ञानोपासक थे, अत: इनके हृदय में भावावेश के लिये स्थान नहीं था ।[२] अपने इस दृढ़ व्यक्तित्व के कारण ही ये अपने गुरु मत्स्येन्द्र नाथ को पुन: योग मार्गारूढ़ करने में समर्थ हो पाये ।

-----------------------------

१. नाथ सम्प्रदाय - पृ.६६

२. वही - पृ.१८८

इन दोनों गुरु-शिष्यों के संबंध में जो अनेक दन्त कथाएं प्रचलित हैं, उन सब में एक बात की समानता है कि जब मत्स्येन्द्र नाथ सांसारिक भोग-विलास में लिप्त होकर अपने योग मार्ग से च्युत हो गये तो उनके शिष्य गोरक्ष नाथने ही अनेक उपायों से उनको सांसारिक मोह-पाश से मुक्ति दिलायी। इन कथाओं में से दो कथाओं में, विवेच्य नाटक के समान, राजा मत्स्येन्द्र नाथ के दरबार में, एक नर्तकी के रूप में गोरक्ष नाथ के प्रवेश का उल्लेख है।

'योगि सम्प्रदायाविष्कृति'[१] में इन दोनों की कथाओं की चर्चा करते हुए कहा गया है कि एक बार नारद जी से पार्वती को यह मालूम हुआ कि शिव के गले में पार्वती के पूर्व जन्मों के कपाल ही मुण्ड-माल के रूप में है। पार्वती के अत्यन्त आग्रह किये जाने पर शिवने उस अमर कथा को समुद्र जैसे निर्जन स्थान में सुनाने का निश्चय किया। इधर कवि नारायण मत्स्येन्द्र नाथ के रूप में एक ब्राह्मण के घर पैदा हुए, किन्तु गंडान्त योग में जन्म लेने के कारण उन्हें समुद्र में फेंक दिया गया। एक मछली उन्हें निगल गयी, इसलिये वे उसी के पेट में बारह वर्ष तक बढ़ते रहे और वहीं से उन्होंने शिव-पार्वती का सम्वाद भी सुन लिया। पश्चात् इन्होंने अपने योग बल से हनुमान, वीर बैताल, भद्रकाली, चामुण्डा आदि को पराजित किया। किन्तु योग बल के रहते हुए भी उन्हें दो बार सांसारिक चक्कर में फंसना पड़ा। प्रथम बार प्रयाग राज के

-----------------------------

१. नाथ सम्प्रदाय, पृ. ४६-५०

राजा की मृत्यु से शोकाकुल जन-समूह को देखकर तथा दया से द्रवित होकर गोरक्षा नाथने ही उन्हें राजा के मृत शरीर में प्रवेश कर लोगों को सुखी करने का आग्रह किया । मत्स्येन्द्र नाथने अपने शरीर से प्राण को हटाकर राजा के शरीर में प्रवेश किया और अपने शरीर की रक्षा करने का भी आदेश दिया । बारह वर्षों तक इन्होंने गृहस्थाश्रम के सुखों का खूब ही उपभोग किया । पश्चात् जब रानियों को इस रहस्य का पता चला तो उन्होंने मत्स्येन्द्र नाथ के शरीर को नष्ट कर देना चाहा । किन्तु गोरक्षा नाथने ही अपनी अद्भुत शक्ति के चमत्कार से अपने गुरू के शरीर की रक्षा की ।

दूसरी बार, त्रिया देश की रानीने अपने रुग्ण और दाक्षिणाकाय पति से असंतुष्ट होकर योग्य पुरूष की कामना से हनुमानजी की कृपा प्राप्त कर ली । हनुमानजीने मत्स्येन्द्रनाथ को जाने का आदेश दिया । इसके बाद से रानियोंने अपने राज्य में योगियों का आना निषिद्ध कर दिया । गोरक्षानाथ, बहुत समय तक अपने गुरू को भोग में लिप्त देखकर उनके उद्धार के लिये चल पड़े । मार्ग में हनुमानजी के बाधा दिये जाने पर उन्होंने बालक का रूप बनाकर, उस राज्य में प्रवेश किया । उसी समय एक नर्तकी ---- कलिंगा नाम की वेश्या ---- अन्त:पुर में नृत्य करने जा रही थी । गोरक्षा नाथने स्त्री-वेष बनाने तथा तबला बजाने में अपनी निपुणता का परिचय देकर उसीके साथ अन्त:पुर में प्रवेश किया । नृत्य प्रारंभ होते ही इन्होंने तबलची के पेट में अपने योग बल से दर्द उत्पन्न कर दिया जिससे निरूपाय

हो कर उस नर्तकीने इनसे ही तबला बजाने का आग्रह किया । अवसर से लाभ उठाकर इन्होंने तबले पर 'जाग मछन्दर गोरख आया' की ध्वनि निकाली, जिससे मत्स्येन्द्र नाथ को चैतन्य लाभ हुआ । रानियोंने दोनों को वश में रखने का अनेक कष्ट-साध्य प्रयत्न भी किया किन्तु वे असफल रहीं । अंत में गोरक्षा नाथ अपने गुरु के साथ वहां से चल दिये ।

दूसरी कथा फयजुल्ला कृत गोरक्षा विजय की है ।[१] यह बंगाल का प्रसिद्ध मुसलमान कवि हो गया है । इसके द्वारा प्रस्तुत गोरक्षा विजय की कथा अनेक अंशों में, हमारे अध्ययन के अन्तर्गत आनेवाले 'गोरक्षा विजय' नामक प्रस्तुत नाटक से समानता रखती है । फयजुल्लाने इस कथा का उल्लेख करते हुए कहा है कि आदय और आदयाने सर्व प्रथम देवताओं की सृष्टि की और पश्चात् चार सिद्धों की, जिनके नाम क्रमश: मीन नाथ, गोरक्षा नाथ, जालंधर नाथ और कानूपा या कृष्णपाद हैं । इन दोनोंने मिलकर एक गौरी नाम की कन्या भी उत्पन्न की, जिनका विवाह शिव के साथ हुआ । एक दिन गौरी के पूछने पर शिवने बताया कि उनके गले में गौरी के ही मुण्ड माल हैं । इसके कारणों को शिवने समुद्र में ही बताना उचित समझा । मीननाथ मछली बनकर उस नौके के नीचे बैठ गये । गौरी तो सो गयीं किन्तु बातों के बीच में मीननाथ ही हुंकारी भरते रहे । पश्चात् रहस्य ज्ञात होने पर शिवने शाप दे दिया कि एक समय तुम इस महाज्ञान को भूल जाओगे ।[२]

---

१. नाथ सम्प्रदाय - पृ. ४६-४७

२. तुलनीय - हिस्ट्री ओफ नेपाल - पृ. ८३-८४

पुन: एक समय शिव के यह कहने पर कि सिद्धों में काम-विकार होता ही नहीं, तो देवीने उनकी परीक्षा लेनी चाही। शिवने अपने ध्यान-बल से चारों दिशाओं में तप कर रहे चारों सिद्धों को एक ही स्थान पर एकत्रित कर दिया। देवीने भुवन-मोहनी रूप धारण कर उनको भोजन कराया। उस अपूर्व रूप-लावण्य को देखकर चारों मुग्ध हो गये और चारों के मन में उस स्त्री के प्रति विभिन्न प्रकार की भावनाएं पैदा हुईं। मीननाथने मन में विचार किया कि यदि ऐसी सुन्दरी स्त्री मिले तो सुखपूर्वक केलि करते हुए रात व्यतीत कर लूं। भाव जान कर देवीने उन्हें शाप दिया कि तुम महाज्ञान भूलकर कदली देश में सोलह सौ सुन्दरियों के साथ काम कौतुक में रहोगे। इस प्रकार जालन्धर नाथ और कृष्णपाद को भी उनकी कुभावनाओं के अनुसार शाप मिला। परन्तु गोरक्ष नाथ के मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि यदि ऐसी सुन्दरी मेरी माता हो तो मैं उसकी गोद में बैठकर सस्नेह दुग्ध पान किया करूं। ये परीक्षा में खरे उतरे। देवीने इनकी और अनेक कठिन परीक्षाएं लीं किन्तु ये सभी में सफल ही रहे।

एक दिन ये किसी बकुल वृक्ष के नीचे ध्यान लगा रहे थे कि उसी समय ठीक उनके ऊपर से कानफा जा रहा था। छाया देखकर गोरक्ष नाथने क्रोध में अपना खड़ाऊं ऊपर फेंका जिससे वह नीचे आ गिरा। इस पर उस कानफाने व्यंग्य करते हुए कहा कि यदि तुम ऐसे ही सिद्ध बनते हो तो अपने गुरू का उद्धार क्यों नहीं करते, जो महाज्ञान भूलकर कदली देश में स्त्रियों के साथ विहार

कर रहा है । उनकी आयु के भी तो अब केवल तीन ही दिन शेष रह गये हैं । इस व्यंग्य-वाण से उनका हृदय व्यथित हो गया और वे तत्क्षण ही यमराज के यहां जाकर अपने गुरू की आयुक्षीणता को मिटा दिया । पुन: वे लंग और महालंग नाम के अपने दो शिष्यों को साथ लेकर अपने गुरू के उद्धार के लिये कदली देश को चल पड़े । प्रथम तो उन्होंने ब्राह्मण का वेष बनाया, किन्तु उस वेष में उन्हें अनेक धर्म संकटों का सामना करना पड़ा ; इसलिये उन्होंने उस वेष को त्याग दिया और योगी का रूप धारण कर कदली देश के एक सरोवर के किनारे बैठ गये ।

इसी समय उस सरोवर में एक कदली-नारी आयी जो इनको देखते ही इनके रूप पर मोहित हो गयी । उसी नारी से उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके गुरू सोलह सौ सेविकाओं से आवृत्त मंगला और कमला नाम की पट रानियों के साथ विहार कर रहे हैं । प्रथम तो वहां तक किसी योगी का प्रवेश हो नहीं पाता ; दूसरे कोई योगी किसी प्रकार पहुंच भी जाता है तो उसे प्राण दंड दे दिया जाता है । केवल नर्तकियां ही वहां तक जा सकती हैं । अपने गुरू के उद्धार के लिये गोरक्षा नाथने एक नर्तकी का वेष बनाकर अन्त:पुर में प्रवेश पाने की अनुमति चाही । किन्तु इस नर्तकी के रूप की बात सुनकर रानियोंने ईर्ष्यावश उसे यहां तक जाने ही नहीं दिया । अंत में गोरक्षा नाथने द्वार से ही मर्दल की ध्वनि की, जिस पर मुग्ध होकर मीन नाथने उस नर्तकी को अन्दर ले आने का आदेश दिया । गोरक्षा नाथने मर्दल की ध्वनि से ही अपने गुरू को पहले की बातों का स्मरण दिलाया, जिसके कारण ही उन्हें चैतन्य प्राप्त हुआ । रानियोंने पुत्र बिन्दुनाथ को लेकर,

४५

क्रन्दन करते हुए मीननाथ को विचलित करना चाहा किन्तु गोरक्षा नाथने विन्दुनाथ को मृत बनाकर और पुन: जीवित करके अपने गुरू को तत्वज्ञान का प्रकाश दिखाया । रानियोंने गोरक्षानाथ को मरवा देने का विचार किया ; इस पर उन्होंने रानियों को शाप देकर चमगादड़ बना दिया । अंत में ये अपने गुरू और विन्दुनाथ को लेकर अपने स्थान विजय नगर को लौट पड़े ।

विद्यापतिने इन्हीं कथाओं को नाटक का रूप देकर बहुत ही आकर्षक और प्रभावोत्पादक बना दिया है । इनके 'गोरक्षा विजय' का कथा-सार इस प्रकार है -----

नांदी के पश्चात् सूत्रधार प्रवेश कर नटी को बुलाता है और भैरव पूजा के अवसर पर 'गोरक्षा विजय' नामक नाटक के अभिनय करने का विचार प्रकट करता है । सूत्रधार इस नाटक के अभिनय के लिये केवल शरद् ऋतु को ही उपयुक्त समझता है । इसी बीच नेपथ्य से गीत के द्वारा यह सूचित कर दिया जाता है कि मत्स्येन्द्र नाथ योग मार्ग से भ्रष्ट होकर सौ युवतियों के साथ विहार कर रहे हैं । अत: उनके उद्धार के लिये उनके शिष्य गोरख नाथ प्रस्थान कर रहे हैं । पश्चात् गोरखनाथ अपने शिष्य काननिपाद के साथ राज द्वार पर आकर अन्दर प्रवेश पाना चाहते हैं, किन्तु उनके अपनी शक्तियों के परिचय देने पर भी द्वारपाल उन्हें बाहर ही रोक लेता है ।

दूसरे दृश्य में महामंत्री को इनके आने की सूचना दी जाती है । महामंत्री, इन्हें राजा के पूर्व परिचित जान कर अन्दर आने की अनुमति दे देता है, परन्तु उसी समय महामंत्री को सूचना मिलती है

कि राजा अभी सुन्दरी-कोमलांगियों के साथ केलि कर रहे हैं, जहां पर किसी पुरूष का जाना निषिद्ध है । यहां पर नाटक में दो तीन गीतों के द्वारा राजा मत्स्येन्द्रनाथ के धन-वैभव तथा केलि-क्रीड़ा का वर्णन किया गया है । इसी बीच द्वारपाल आकर राजा से निवेदन करता है कि तेलंग देश के दो नर्तक अपना नृत्य प्रस्तुत करना चाहते हैं । राजा उन्हें सादर अन्दर लिवा लाने का आदेश देता है । नर्तक के वेष में दोनों योगी आकर चारों अंगों से युक्त ताण्डव और लास्य नृत्य प्रस्तुत करते हैं । राजा इस नृत्य से इतने मुग्ध हो जाते हैं कि वे उन नर्तकों को सर्वस्व अर्पित करने तक को उद्यत हो जाते हैं । इतने में उनका पुत्र विन्दु आता है और अकस्मात् उसकी मृत्यु हो जाती है । राजाज्ञा होती है कि बालक की हत्या करने वाले इन योगियों के प्राण ले लिये जायें । अचानक विपत्ति को आया देखकर ये दोनों विनय के स्वर में कहते हैं कि इसे पुनर्जीवित किया जा सकता है, किन्तु अब राजा को इन पर विश्वास नहीं है । अन्तत: जब उनका पुत्र जीवित हो उठता है तो राजा आनन्द विभोर हो जाता हैं । इस अलौकिक चमत्कार को देखकर योगियों के रहस्य का उद्घाटन हो जाता है और तब मत्स्येन्द्रनाथ पश्चाताप करते हुए कहते हैं कि मैं ने राजा होकर अपनी सारी यौगिक शक्ति को विस्मृत कर दिया है ।

गोरखनाथ अपने गुरु के महत्त्व को प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि वे स्वयं शिव के ही शिष्य हैं । वहां उपस्थित युवतियों ने इस अद्भुत चमत्कार एवं राजा की अलौकिक शक्ति को जान कर

४७

उन्हें प्रणाम किया । पश्चात् इन रमणियोंने अनेक प्रकार के सांसारिक प्रलोभनों का स्मरण दिलाकर राजा को उस मोह-पाश में आबद्ध करने की चेष्टाएं करते हुए कहा कि तुम तो उस काले भ्रमर के समान हो जो केवल पुष्पों का रस चूसकर उड़ जाना भर जानता है । हमारे नव वय पर तरस खाकर, इन योगियों के मिथ्या वचनों पर ध्यान दिये विना ही हमारे साथ केलि-क्रीड़ाओं में पूर्वानुरूप मग्न रहते हुए जीवन के शेष समय व्यतीत करो ।

इन दो विरोधी तथ्यों के कारण मत्स्येन्द्रनाथ के हृदय में सांसारिक भोग-लिप्सा और आध्यात्मिक प्रकाश के बीच द्वन्द्व मच जाने से उनका मन इतस्तत: करने लगता है । इसे लक्ष्य कर गोरखनाथ उन्हें फटकारते हुए कहते हैं कि तुम्हें अनेक बार धिक्कार है, जिसने वनिता के मोह-पाश में आबद्ध होकर अपने गुरु का उपदेश भी विस्मृत कर दिया । इस धिक्कार से मत्स्येन्द्रनाथ को चैतन्य लाभ होता है और वे उन वनिताओं का त्याग कर गोरखनाथ के साथ आ जाते हैं । इस प्रकार अपने गुरू का उद्धार करने में गोरखनाथ की विजय होती है ।

फयजुल्ला कृत गोरक्ष विजय एवं विद्यापति के **गोरक्ष** विजय में प्रथम अंतर यह है कि फयजुल्लाने गोरक्षनाथ को अपने दो शिष्यों --- लंग और महालंग --- के साथ प्रस्थान करने का उल्लेख किया है ; किन्तु विद्यापतिने केवल एक ही शिष्य --- काननिपाद के साथ जाने की बात बतायी है । दूसरा अंतर यह है कि विद्यापतिने नर्तकी को तेलंग देश का बताया है और

राजाज्ञा होने पर वह शीघ्र ही अन्त:पुर में बुला ली जाती है ; किन्तु फयजुल्लाने उसे कदली देश का ही बता कर, उसके रूप-लावण्य के कारण रानियों के हृदय में ईर्ष्या के भाव का उल्लेख किया है । अन्दर प्रवेश नहीं पाने पर नर्तकी के वेष में गोरक्षा नाथने द्वारपर ही मर्दल की ध्वनि की, जिसे सुन कर मत्स्येन्द्र नाथ को चैतन्य प्राप्त हुआ । विद्यापतिने न तो मर्दल का उल्लेख किया है और न नृत्य के द्वारा चैतन्य प्राप्त करने का प्रसंग ही बताया है । गोरक्षा नाथ के धिक्कारने पर ही वे अपने स्वरूप को पहचानने में समर्थ हो पाये । नाटक में गोरक्षानाथ को षडयंत्र के द्वारा मर बाये जाने का प्रसंग नहीं आता । विद्यापतिने नाटकीय तत्वों के माध्यम से मत्स्येन्द्र नाथ के हृदय में भौतिक एवं आध्यात्मिक अथवा श्रेय एवं प्रेय के बीच आन्तरिक संघर्ष उत्पन्न कर अपने नाटक में जीवन के गतिशील तत्वों का समावेश कर दिया है जो इस नाटक की निजी विशेषता है ।

<u>समीक्षा</u> ----- मैथिल-कोकिल विद्यापति अभी तक हिन्दी साहित्य के विद्वानों एवं अध्येताओं के समक्ष प्रधान रूप से कवि रूप में ही आये हैं । उनके नाट्यकार के व्यक्तित्व से हिन्दी-जगत् एक प्रकार से अपरिचित ही रहा है ; किन्तु यह नाटक उन्हें एक कुशल नाटककार के व्यक्तित्व से मण्डित करता है ।

प्रस्तुत नाटक के संबंध में कुछ कहने के पूर्व यहां इस तथ्य को स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि इस नाटक तथा इस काल के अन्य नाटकों की विवेचना किसी एक शैली पर नहीं की जा सकती ; क्योंकि जैसा कि कहा जा चुका है कि नाटक-साहित्य

के संक्रान्तिकाल में शास्त्रीय एवं लोक नाट्य शैलियों के परस्पर सम्पर्क के कारण दोनों में एक दूसरे के तत्व गृहीत हुए । इस संमिश्रण के कारण आदि कालीन नाटकों के तंत्र नितान्त भिन्न प्रकार के प्रतीत होते हैं । लोक नाटकों की कथावस्तु की रचना एक के उपरान्त दूसरी घटनाओं को अव्यवस्थित रूप से जोड़ कर भी कर दी जाती है । विविध पुराणोतिहास तथा लोक प्रचलित दन्त कथाओं में कल्पना का पुट मिला कर लोक नाट्य तैयार कर लिया जाता है । अतएव ऐसे नाट्य रूपों में शास्त्रीय क्रम की अपेक्षा संगीत के महत्व की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है । हिन्दी नाट्य-साहित्य के विद्वान् डा. ओझा जी के अनुसार "इन नाट्य शैलियों की कलात्मकता का परीक्षण करने के लिये यह जान लेना आवश्यक है कि उनमें संगीत और नृत्य की रमणीयता के साथ-साथ नाटकत्व किस मात्रा में विद्यमान है । नाटकत्व के लिये कथोपकथन में जितनी सुसम्बद्धता होगी, आरोहावरोह रहेगा और घटनाएं कौतूहल वर्द्धक होंगी, नाटक उतना ही प्रभावशाली होगा । - - - - - - - - - - जिन खेलों में ये सभी गुण विद्यमान होते हैं वे उच्च कोटि के नाटक माने जाते हैं । किन्तु यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जन नाटकों में कथानक की सम्बद्धता के लिये कार्यावस्था आदि का उतना ध्यान नहीं रखा जाता जितना समयोपयोगी और जनरुचि के अनुरूप होने का ।"[१]

जन-नाटकों की दूसरी विशेषता उन्हीं के शब्दों में यह है कि "इन नाट्य शैलियों में श्रद्धा और विश्वास की शक्ति को

------------------------------

१. डा. दशरथ ओझा - नाट्य समीक्षा - पृ. ७४

असीम मान कर चलना पड़ता है । इन में यौगिक शक्ति के बल पर मृतक का जीवित होना, आकाश में उड़ना, विशाल समुद्र का सूख जाना, दीवाल का चल पड़ना, पर्वत का उड़ना आदि नितान्त स्वाभाविक रूप में स्वीकार किया जाता है । इन नाटकों में क्रिया शीलता के स्थान पर संगीत और नृत्य को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है । कारण यह है कि लोक नाटकों में कवि का उद्देश्य दर्शक की भावनाओं को उद्बुद्ध कर उन्हें रसमय करना होता है । जीवन की गुत्थियों को सुलझाने के लिये बुद्धि को प्रखर बनाना नहीं, मुख्य ध्येय मनो विनोद होता है ; गंभीर चिंतन नहीं : कुरीतियों पर व्यंग्य होता है, समस्याओं का समाधान नहीं ।'[१]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यदि 'गोरक्षा विजय' की विवेचना करें तो हम देखेंगे कि इसमें जन-नाट्य शैलियों के साथ ही कुछ शास्त्रीय लक्षणों का भी निर्वाह हुआ है । अति-मानवीय तत्वों का समावेश, संगीत तत्व की प्रधानता, सम सामयिक जन-रूचि, गीतों के माध्यम से पात्रों का परिचय आदि तत्वों का समावेश यदि जन-नाट्य शैली पर हुआ है तो प्रख्यात इतिवृत्त, आठ पदों में आशीर्वचन युक्त शिव-स्तुति, नाटककार, आश्रयदाता एवं अभिनय के उपयुक्त समय का उल्लेख, भरत वाक्य का रूप आदि कतिपय शास्त्रीय तत्व भी समाविष्ट हैं । इस नाटक में पंच कार्यावस्थाओं का निर्वाह भी न्यूनाधिक मात्रा में हुआ है । प्रथम अवस्था प्रारंभ

---

१. डा. दशरथ ओझा - नाट्य समीक्षा - पृ. ८३

है, जिसके अन्तर्गत नेता में किसी वस्तु-प्राप्ति की इच्छा होती है - यह दूसरी बात है कि उसका प्रकाशन कोई दूसरा ही पात्र करे । इस नाटक में नेपथ्य से गीत द्वारा उसका प्रकाशन इस प्रकार हुआ है -----

अच्छ अच्छ राजा मछेन्द्रनाथ ।
योग तेजि रे युवति शत साथ ।।
× × × ×
गुरूक उदे से गोरख आव ।। (आदि पृ.२ ख)

यहां प्रारंभ नाम की कार्यावस्था और बीज नाम की अर्थ प्रकृति प्रारंभ होती हैं । दूसरी अवस्था प्रयत्न है, जब नायक उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये यत्नशील होता है । गोरख नाथ के अपने शिष्य के साथ प्रस्थान करने से लेकर उनके नर्तकी के वेष को धारण करने तक यही अवस्था और बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति चलती रहती है । तृतीय अवस्था प्राप्त्याशा है, जिस में अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित होते हैं । नायक आशा और निराशा के बीच डगमगाता रहता है ; उसे कभी तो सफलता की आशा हो जाती है और कभी वह असफलता से निरूत्साहित हो जाता है । इस नाटक में राजकुमार की मृत्यु की घटना से लेकर रानियों के अनुनय-विनय तथा चमत्कारिक दृश्यों के कारण मत्स्येन्द्र नाथ के हृदय में चल रहे द्वन्द्वों तक इस अवस्था की स्थिति मानी जायेगी । चौथी अवस्था नियताप्ति है, इस में नायक सारे विघ्नों पर विजय प्राप्त कर लेता है और उसे अपनी सफलता पर पूर्ण विश्वास हो जाता है, इस प्रकार सफलता नियत हो जाती है । गोरखनाथ जब अपने गुरू की भर्त्सना करते हुए उन्हें पूर्व कथाओं का स्मरण

दिलाते हैं तो मत्स्येन्द्र नाथ के हृदय में आत्मिक चेतना आ जाती है और वे गोरखनाथ के अनुग्रह को स्वीकार करते हैं -- इस प्रसंग तक नियताप्ति नाम की चौथी कार्यावस्था चलती है । पांचवी अवस्था फलागम है, जिसमें नायक हर तरह से विजय प्राप्त कर लेता है । मत्स्येन्द्रनाथ का सब भोग-विलास छोड़कर गोरखनाथ का अनुगामी बन जाना फलागम की स्थिति है । नाटक में गतिशीलता लाने के लिये उसमें संघर्ष का होना अनिवार्य है । प्रस्तुत नाटक में यह संघर्ष अपने दोनों रूपों में -- आन्तरिक और बाह्य - विद्यमान है जिनके कारण इसमें जीवन तत्व का समावेश हो गया है ।

गीतों के माध्यम से कथावस्तु में स्वाभाविक विकास लाने का यत्न किया गया है । अतएव ये गीत नाटक के अभिन्न अंग बन गये हैं । कदली नगर में राजा मीननाथ की महत्ता तथा उस नगर में गोरखनाथ का प्रवेश एक गीत के द्वारा ही सूचित किया गया है ।[१] इसी प्रकार एक गीत के माध्यम से महामंत्री के व्यवहार एवं

---

१. कदलि पुर पाटन नगर एहु आथि ।
लाखो धोल गहरो पूतां हाथि ।।
मीननाथ राजा परताप ।
आज्ञा लंघिज कनक बाप ।।
------------------------
कथा जाई बोला कथा जाइ बोला ।
------------ नटन प्रवेश ।।
(आदि पृ.५क)

स्वभाव का परिचय मिल जाता है ।[१] इस लघु नाटक में सापेक्षा व्यवहार अथवा कथोपकथन के द्वारा चारित्रिक वैशिष्ट्य के उल्लेख का अवकाश नहीं होने से गीत के द्वारा ही उसका निर्देशन अपेक्षित था ।

प्रस्तुत लघु नाटक में अंग के रूप में शृंगार, रौद्र तथा अद्भुत रस को तथा अंगी के रूप में शान्त रस को स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि नाटक का पर्यवसान भी शान्त रस में ही होता है ।[२]

---

१. मन्तर गमन मन्तको भारे ।
दूध पानि बेक तार विचारे ।।
करि पिरिति नीति मने
सब मने राज-काज परे हीढि ।। ध्रुवं ।।
आएल महथ महामति नाम ।
आसन कैं अवकासह ठाम ।।
तपत प्रताप सबहि दिय घाव ।
--------- तनि अलस रे आव ।।
(आदि पृ.५ ख)

२. तओ मोर गोरख प्रथमक सीषा ।
रौवा असलहु देह आसीषा ।। ध्रुवं ।।
सब आ गुरू भगति पए जान ।
तोहे मोर गोरख प्राण समान ।।
महादेव देवी सबे होथु ।
जन पद जन पूजाइए लेथु ।।
- - - - - - - - - - - (आदि पृ.१२ क ख )

पूर्ववर्ती पृष्ठों पर जो मैथिली के आदिकालीन नाटकों की विवेचना प्रस्तुत की गयी है उसे हम सूत्र रूप में इस प्रकार रख सकते हैं -----

परिस्थितियों की विविधता के कारण इस काल में नाटक की धारा तीन भागों में विभक्त हो जाती है । बज्रयानियों एवं विधर्मीशासन से समाज में अनेक कुरूढ़ियाँ और भ्रष्टाचार आ गये जिससे समाज जर्जरित हो उठा । उन व्याधियों के निरोध के लिये प्रहसन उपयुक्त आयुध सिद्ध हुआ । बंगाल के कीर्तन एवं भागवत् धर्म के प्रसार के कारण कृष्ण की लीलाओं की प्रधानता बढ़ने लगी । इसकी रागानुगात्मिकता के कारण इसे शीघ्र ही जन-नैकट्य प्राप्त हो गया । उमापतिने इसी शैली पर रचना प्रस्तुत की जो कालान्तार में कीर्तनियां के नाम से अभिहित की गयी । नाथ सम्प्रदाय में शिव एवं शाक्त मतों के अन्तर्मुक्त हो जाने से उसे भी वेद विहित मान लिया गया । योग-साधना के समावेश से इस में अनेक चमत्कारिक प्रसंगों की कल्पना कर ली गयी जिससे जनता विस्मय में आकर अत्यधिक प्रभावित होती थी और इस सम्प्रदाय के संबंध में अनेक कथाएं भी प्रचलित हो गयीं, जिसे अपना कर विद्यापतिने गोरक्षा विजय नामक चरित्रात्मक नाटक की रचना प्रस्तुत की ।

इस काल के पश्चात् लगभग शताब्दी तक अनेक राजनीतिक कारणों से मिथिला में नाट्य-रचना की धारा अवरूद्ध हो गयी और इसका यही रूप उपयुक्त आश्रय प्राप्त कर नेपाल के राजाश्रय में पल्लवित और पुष्पित होता रहा, जो परवर्ती अध्यायों के विवेचन से प्रकट है ।

---000---